थर्ड क्लास

पीले रंगका रेलका डब्बा है। बहुतसे बकुची-बकुचे, बीस-पचीस टूटे-फूटे भदमैले ट्रङ्क, दस-बारह टोकनियाँ, पन्द्रह-बीसेक कैम्बिसके बैग और बोरे, बीस-पचीस फटी कथड़ियाँ, बीसियों चिलम, हुक्के पानदान और पानीके गिलास-लोटे दिखाई दे रहे हैं। कहीं-कहीं जूते भी—पम्प-शू, स्लीपर, डरबी, कैम्ब्रिज, पंजाबी, सलीमशाही, दिल्लीवाल, घेतल, कलकत्ता, कानपुर, कटक, आगरा—सभी जगहके नये-पुराने नमूने एकसाथ ले लो।

डब्बेके भीतर सिरके ऊपर लिखा है, "चौबीस मुसाफिर बैठेगा।" चौबीस मुसाफिरोंके लिए साढ़े-चार बेञ्चें हैं। जिनमें आधीपर 'कलट्टर साहब' के अरदलीका कब्जा

बुरी बदबू मार रही है। पाखानेका दरवाजा रस्सीसे बँधा हुआ है, चटकनी नहीं है। एक बेञ्चके नीचे मरा हुआ चूहा पड़ा सड़ रहा है, दूसरी बेञ्चके तले केलेके छिलके भिनक रहे हैं। खैनी, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, गाँजा, तेल, मैले-कुचैले कम्बल और कथड़ी, काबुली बकुचे और कलट्टर साहबके अरदलीकी डाट-खुली 'रम'की बोतल, सबकी बदबू एकसाथ मिलकर लपटें छोड़ रही है।

भादोंकी गरमी है। छोटे-छोटे बच्चे बिलख-बिलखकर रो रहे हैं। जरा-सी हवाके लिए एक खिड़कीमें से तीन-चार यात्रियोंके सिर एकसाथ बाहर निकलनेकी कोशिश कर रहे हैं। ऐसी हालतमें घूंघटके भीतर पसीनेसे तर-बतर एक युवती सतर्कतासे आँचल हिलाकर ठंडी होनेकी व्यर्थ कोशिश कर रही है। कोनेमें एक बुढ़िया सिमटी हुई बुखारकी गरमीमें धधक रही है।

'टन! टन! टन!'

सिटी।

स्टेशन आ गया।

'पान बिड़ी सिगरेट!' 'पूऽड़ी मिठाई!' 'हिऽन्दू चाय गर्यम

"ऐ कुली, इधर!"

"इधर कहाँ? दीखता नहीं क्या, कमरा भरा पड़ा

"इसमें चढ़ता क्यों नहीं ?"

"कोई चढ़ने नहीं देता बाबूजी !"

"काहे नहीं डेगा ? गाड़ी उसका बापका है ? जल्दी चढ़ो ! —हैलो, गुडमौर्निङ्ग पेड्रूज !"

टिकट-बाबू गार्डके डब्बेकी तरफ दौड़े।

"चढ़-चढ़ महेश, अरे, झण्डी दे दी ! घुस जल्दी।"

'घचांग !'

'अरे बाप रे, इसीमें !' 'बस दो ही स्टेशनके लिए भाई साहब !' 'हटाना जरा इसको, किसकी है यह गठरी ! उ:फ, बड़ी गरमी है।'

सीटी दे दी।

फिलहाल चवालीस मुसाफिर हैं।

'घट्ट !' सिरपर टोप, सफेद कोट-पतलून और सुर्ख चेहरा, फ्लाइंग-चेकर हैं। शंकित युवती और भी सिमट गई। जरा आगे बढ़कर युवतीकी देहसे सटकर चेकर खड़ा हो गया, सामनेके बुड्ढेसे बोला—"एइ, टिकट डिकलाउ !"

"दिखाता हूं सा'ब।"

"जल्दी निकालो। एइ, हटो डैम !"

बालक डरके मारे पैरके पाससे हट गया, लेकिन गिर पड़ा।

"टुमरा टिकट ?"

"जल्दीमें ले नहीं सका सा'ब, दासपुर उतरूंगा।"

"टिकट नहीं लिया ? निकालो, रुपया निकालो।"

"जल्दी करो मैन !"

"देता हूं साहब, ये लीजिये सात आना।"

"नई होगा, रुपी डेओ!"

बेचारेने अंगोछेके ठोकमेंसे और चार आना निकालकर दिये। बस इतनी ही उसकी पूंजी थी।

"आउर डेओ!"

"और कहांसे लायें साहब? आठ आना टिकटके दाम हैं, ग्यारह आना दे दिये, अब नहीं है मेरे पास।"

"आठ आना मासूल, आउर आठ आना जुरमाना।"

"साहब, अबकी बार माफ कर दो साहब!"

"अच्छा ठीक है, ऐसा माफिक कभी मत करो।"

"एइ हटो, जाने डेउ, एइ जनाना।"—कहता हुआ घबराई हुई युवतीको कुहनीसे धक्का देकर, बुड्ढेका पैर कुछलकर, साहब बाहर निकल गया।

"अरे मर गया!"—बुड्ढेका आर्तनाद।

"साहब, हमारा म'सूल ले लिया, टिकट?"

"मट चिल्लाओ!"—साहब दूसरे डब्बेमें घुस गया।

'बलदपोर!' 'बलदपोर!'—स्टेशनका पोर्टर चिल्लाने लगा। फिर वही शोर-गुल। गाड़ीमें बैठनेके लिए यात्रियोंका वही जी-तोड़ उद्यम। स्टेशन-मास्टरकी विचित्र हिन्दी, रेलवेके कुलियोंकी गाली-गलौज। थर्ड क्लासके यात्रियोंका कोलाहल और आर्तनाद।

"एइ, घण्टी डो!"—स्टेशन-मास्टर बोले।

"तनिक ठहर जा बेटा ! ओ साहब-बाबू, तनिक ठहरा दे बेटा !"—कहती हुई हाथमें पोटली लिये एक बुढ़िया गाड़ीके पास तक पहुंच गई।

"अरे हट जा बुढ़िया !"

गाड़ी छूट गई। बुढ़ियाने बड़ी मिन्नत-खुशामदके साथ कहा—"अरे मेरा मोहना नहीं जीयेगा रे बेटा, सबेरे आई थी बैदके पास दवा लेने,—अरे मेरा मोहना फड़फड़ाता होगा !" कहती हुई वह डब्बेकी ओर लपकी।

टिकट-बाबूने उसे पकड़ लिया। रेल छूट गई। बुढ़ियाने हाथकी पोटली प्लेटफार्मपर फेंक दी; और बड़े करुण-स्वरसे बिलखने लगी—"अरे मेरा मोहना रे !" रेल चलनेकी आवाजमें उसके बाकीके शब्द सुनाई नहीं दिये।

गाड़ी चल रही है। मैं सोच ही रहा था कि डब्बेकी खिड़कियाँ सब बन्द कर दी जायँ, तो कितनी देरमें ऐतिहासिक अन्धकूप-हत्याका पुनराभिनय हो सकता है।

इतनेमें गाड़ी रुकी। प्याससे घबराये हुए मुसाफिर एकसाथ चिल्ला उठे—"पानी पाँड़े ! ए पानी पाँड़े !" और साथ ही आस-पासकी पचासों खिड़कियोंमेंसे दो-डेढ़ सौ रीते लोटे गिलास कटोरे और बधने निकल पड़े।

"ए पानी पाँड़े ! इधर दो, इधर !"

काले रंगकी बालटी हाथमें लटकाके नंगे-पैर सिरपर अंगोछा बाँधे पानी-पाँड़े आ पहुंचा। मारे झुँझलाहटके घुड़ककर बोला—"इधर दो इधर ! तोहरे हुकुमसे पानी मिली ?" उसके बाद

धीमे स्वरसे बोला—"एक-एक लोटा दो-दो पैसा।" बायें हाथकी मुट्ठी पैसोंसे भरकर और दायें हाथमें रीती बालटी लटकाये पानी-पाँड़े महाराज वापस जा रहे थे। इतनेमें कलक्टर साहबके अरदलीने ऊँघना छोड़कर आवाज दी—"ए पाँड़े! पानी ले आओ!" पाँड़ेजीकी आँखोंमें सुर्खी आ गई, मुंह फेरकर देखा तो लम्बी दाढ़ीवाले सरकारी पगड़ी-सुशोभित अरदली-साहब! हाथकी बालटी नीचे रखकर लम्बा सलाम किया, बोला—"सलाम हजूर! तनी सबुर कीजिये, ताजा पानी लाइत है।"

बड़ी अकड़के साथ अरदली साहब अपनी बेञ्चपर आकर बैठ गये और मूछोंपर ताव देने लगे।

गाड़ी दस मिनट ठहरनी चाहिये थी; लेकिन बीस मिनट हो गये, छूटी नहीं। गरमीके मारे घबराकर प्लेटफार्मपर उतर आया। पोर्टर आ रहा था।

"क्यों जी, गाड़ी छूटनेमें इतनी देर क्यों हो रही है, बतला सकते हो?"

"नहीं मालूम।"

पोर्टर चला गया।

टिकट-चेकर आ रहे हैं।

"चेकर-साहब, गाड़ी छूटनेमें देर क्यों हो रही है?"

"केडी साहबकी लेडी खाना खाने गई हैं।"

"केडी साहब कौन?"

"ह्वाट फॉर योर नोइङ्ग?"

मेरे जाननेसे फायदा क्या, यह समझकर मैं चुप हो गया।

चेकर-साहब चले गये।

रीती बोतलोंकी घड़ड़-घड़ड़ आवाज करता हुआ सोडा-वाटरवाला आ रहा था।

"मियाँ साहब, केडी साहब कौन हैं, बतला सकते हो?"

"नीलगंजके पट-सनके दलाल हैं, सेकण्ड क्लासमें!"

केडी साहबकी लेडी आईं, स्टेशन-मास्टर साथ-साथ आये, और उन्हें डब्बेमें बिठा गये। गार्ड साहबने स्टेशन-मास्टरसे पूछकर हरी झंडी दिखाई। गाड़ी चल दी।

मेरे कानोंमें सहसा बुढ़ियाका करुण-स्वर घुमड़ने लगा—"तनिक ठहर जा बेटा! ओ साहब-बाबू, तनिक ठहरा दे बेटा! अरे मेरा मोहना रे, मोहना!"

सिन्दूरवाला

१

चैतकी फसल बोकर राजाराम कलकत्ता आता, और वर्षा शुरू होते ही देश लौट जाता। इन छै महीनोंमें मैं रोज देखता कि एकाक्षो राजाराम पाठक सिरपर लाल रंगकी एक छोटी-सी टीनकी पेटी लादे आवाज लगाता जा रहा है—"चीना सिन्दूर लेउ, चीना सिन्दू-ऊ-र!" और उसके पीछे नंग-धड़ंग लड़कोंका झुण्डका झुण्ड वृन्दावन लेनकी नींदसे अलसाई हुई दुपहरीको सहसा चौंका-कर चिल्ला रहा है—"काना झींगूर लेउ, काना झींगू-ऊ-र!" कब और किस छन्द-रसिक शिशु-कविने सिन्दूर

बेचनेवाले राजारामके लिए यह अपूर्व स्तुतिवाणी पहले-पहल श्रीकण्ठसे निकाली थी, इसे कोई नहीं जानता; शायद स्वयं कविको भी इस बातकी सुध न हो। बहुत दिनोंसे हर साल नये-नये शिशु-कण्ठ एक ही भाषा और एक ही स्वरमें राजारामका स्वागत करते आ रहे हैं। इस असुन्दर कुरूप स्वागतके लिए राजाराम कभी भी किसी दिन गुस्सा नहीं हुआ, बल्कि देखा गया है कि प्रत्युत्तरमें झींगुर-जैसी आवाज देकर उसने अपने बच्चे साथियोंको उलटा खुश ही किया है।

बीस वर्षसे इसी तरह चला आ रहा था। सहसा एक दिन इस नियमका व्यतिक्रम देखकर राजारामको बड़ा आश्चर्य हुआ। गलीमें एक जगह कुछ बच्चे इकट्ठे होकर खेल रहे थे। राजारामने वहाँ आकर ऊँचे स्वरमें आवाज दी—"चीना सिन्दूर लेऊ, चीना सिन्दू-ऊ-र !"

दूसरे दो-एक कण्ठसे परिचित प्रतिध्वनि सुनाई तो दी, लेकिन रोजकी तरह बड़ जमी नहीं।

बच्चोंका झुण्ड किसी एकको घेरकर बड़ी सावधानी और विनयके साथ चुपचाप खड़ा हुआ उसकी बातें सुन रहा था। राजाराम पास आकर खड़ा हो गया। बात कह रही थी एक लड़की। अपनी नीलाम्बरी साड़ीका आँचल कमरसे लपेटकर हिलाती हुई वह इस बातको प्रमाणित कर रही थी कि 'कानेको काना और लंगड़े-लूलेको लँगड़ा नहीं कहना चाहिए; और अगर कोई कहेगा, तो उसके साथ वक्ताकी जिन्दगी-भरके लिए अड्डी (शायद असहयोग) हो जायगी; और गुड्डा-गुड़ियोंके

ब्याहमें वह उसे कभी भी न्योता न देगी।' समाज-च्युतिके इस कठोर दण्डके डरसे, परिचित कण्ठ-ध्वनि सुनकर भी, बच्चोंका झुण्ड आज चुप रहा।

राजाराम इस बातको समझ गया और वक्ताको एक बार खूब गौरसे देखकर वह चुपचाप वहाँसे चल दिया।

शामको लौटते वक्त गलीको मोड़पर नीले मकानके दरवाजेपर दुपहरीकी शिशु-सभाकी उस नेत्रीके साथ राजारामका साक्षात परिचय हुआ।

राजारामको देखते ही बिना कुछ भूमिकाके बालिकाने कहा—"तुमने पहले जनममें कानेको काना कहा होगा, न सिन्दूरवाले ?"

कहनेकी जरूरत नहीं कि पहले जनमकी बात राजारामको बिलकुल ही याद न थी, लेकिन फिर भी इस नवागता बालिकाके साथ बातचीतका सिलसिला जमानेके लिए उसने कहा—"हाँ, लछिमी बिटिया !"

"मा कहती थी कि इसीसे इस जनममें तुम काने हुए हो, है न ?"—कहकर उसने एक प्रचण्ड अभिशाप-वाणी मुँहसे निकाली—"सान्ती, हुकमा, सुन्दरिया, मोती, सब कोई उस जनममें काने होंगे ! तुम्हें चिढ़ाते हैं न !"

राजारामने दाँतों-तले जीभ दबाकर कहा—"ऐसी बात नहीं कहते, लछिमी-बिटिया !"

अब तो 'लछिमी-बिटिया'ने उग्र रूप धारण कर लिया, बोली—"कहूंगी, हजार बार कहूंगी ! वे तुमसे काना क्यों कहते हैं ?" कहकर जरा थम गई ; और फिर पूछने लगी—"तुम ब्राह्मण हो" ?

राजारामने कहा—"हाँ।"

प्रश्न करनेवालीकी आँखोंमें सन्देह झलकने लगा; पूछ उठी—"देखूं जनेऊ?"

राजारामने फटी मिरजईके भीतरसे मैला जनेऊ निकालकर दिखा दिया।

बालिकाने कहा—"कल रधियाके लड़केके साथ मेरी लड़कीका ब्याह होगा। तुम मन्तर पढ़ दोगे?"

राजारामने उसी क्षण पौरोहित्य करना स्वीकार कर लिया, कहा—"पढ़ दूँगा।"

"लेकिन हमलोग गरीब आदमी हैं, दच्छिना नहीं दे सकेंगे, समझे?"—बड़ी गम्भीरताके साथ बालिका कहने लगी—"इसके और पीले हाथ कर दूं, फिर छुट्टी है। उन दोनोंको तो किसी तरह ब्याह-व्यूह दिया है।" इतना कहकर अपना गुड्डा-गुड़ियोंका डब्बा उठा लाई; और सिन्दूरवालेके हाथमें देकर बोली—"देखो तो सही, मेरी बिटियाका मुंह सूख गया है, मारे घामके! अब इसे पानीमें नहलाकर छाँहमें रखना होगा, नहीं तो मुहल्लेके लोग बऊका मुँह देखते वक्त नाक-मुँह सिकोड़ेंगे; कहेंगे, अच्छी नहीं है।"

इतनेमें भीतरसे बुलाहट हुई—"सरसुती?"

"उँह, मुश्किल है। घड़ी-भर अपने लड़के-बालोंके दुख-सुखकी बातें भी कर लूं, सो भी नहीं।"—कहकर बालिका उठके खड़ी हो गई। गुड्डा-गुड़ियोंका बकस उसके हाथमें देकर राजारामने कहा—"तो चलता हूँ अब, लछिमी-बिटिया!"

"मैं लछिमी नहीं हूँ, सरसुती हूँ सरसुती! मुझे 'सरसुती-बेटी' कहा करो, समझे?"—इतना कहकर बालिका भीतर चली गई।

राजारामके साथ सरस्वतीके परिचयका सूत्रपात हुआ इस तरह।

२

यह बातून लड़की राजारामको सहसा बहुत अच्छी लग गई। धीरे-धीरे बनारसके खिलौने, लाखकी चूड़ियाँ, जरीदार कपड़ोंके दो एक टुकड़े राजारामकी पेटीमें जगह पाकर अन्तमें सरस्वतीके खिलौनोंके बीच आश्रय पाने लगे। प्रतिदिनके आनन्द-शून्य लगातार एकसी खरीद-बिक्रीके बीचमें इस लड़कीके साथ दो घड़ी बातचीत करके राजारामको बड़ा आनन्द मिलता। कभी-कभी वह उस नीले मकानके जंगलेके बाहर चबूतरेपर बैठकर, सिन्दूरकी पेटी अपनी गोदमें रखे, सरस्वतीके साथ उसके बाल-बच्चोंके सुख-दुखकी बातें करते-करते घण्टों बिता देता।

दूसरे मुहल्लेमें जाकर फेरी करनेसे चार-छै पैसेका रोजगार होता, इस बातका बीच-बीचमें उसे खयाल भी हुआ है; लेकिन फिर भी वह अपनी इस प्रगल्भा बान्धवीकी बातोंका मोह छोड़कर उठके जा नहीं सका है, ऐसी दशामें जब कि वह समझता था कि उसकी बातें बिलकुल निरर्थक फिजूल हैं, और कभी भी किसीके किसी काममें नहीं आ सकतीं।

बरसातमें राजाराम देश चला गया।

अबकी बार देशमें एक तरहकी घातक बीमारीका दौरदौरा हुआ। उसके आक्रमणसे राजारामको भी छुटकारा न मिला। छै-सात महीने बीमारी पाकर, एक दिन, माह-फागुनकी दुपहरीमें राजारामने अपनी सिन्दूरकी लाल पेटी सिरपर लादे सरस्वतीके मकानके सामने आकर आवाज दी—"चीना सिन्दूर लेउ, चीना सिन्दू-ऊ-र !"

पर, पहलेकी भाँति आज कोई धप्प-धूम करके उतरकर दरवाजा खोलकर बाहर नहीं निकली ! दूसरी बार आवाज देनेपर नीचेके कमरेका एक जंगला खुल गया। जंगलेके भीतर सरस्वतीको देख भर-मुँह हँसकर राजारामने पूछा—"इस बूढ़ेको अभी तक भूली नहीं हो, सरसुती-बेटी ?"

सरस्वतीने गरदन हिलाकर जवाब दिया—"नहीं।"

राजारामको बड़ा आश्चर्य हुआ, सरस्वती तो बिना बातचीतके रहनेवाली नहीं ! पूछा—"तुम्हारे लड़के-बाले सब अच्छी तरहसे हैं न, बिटिया ?"

सरस्वती बोली—"वे सब मैंने रधियाको दे दिये हैं।"

इसके बाद और-कोई प्रश्न करनेका सूत्र राजारामको ढूँढ़े न मिला। कुछ देर ठहरकर, बहुत सोच-विचारके बाद उसने कहा—"एक बार बाहर आओगी बेटी ?"

सरसुती कुछ बोली नहीं ; पीछेसे उसका छोटा भइया बोल उठा—"माने कहा है, जीजी अब बाहर नहीं निकलेगी। जीजी अब बड़ी हो गई है न !"

"अच्छा ! इसीसे।"

अब कहीं राजारामकी निगाहमें सरस्वतीका परिवर्तन ठीक तौरसे दिखाई दिया। साल-भरसे उसने सरस्वतीको नहीं देखा है; पर एक साल पहले देश जाते समय जिस बातून चंचल लड़कीसे उसने विदा ली थी, उसमें और इसमें जमीन-आसमानका फर्क है। राजाराम इससे किस भाषामें, किस विषयमें कैसे बातचीत करे, यकायक उसकी कुछ समझमें न आया। जरा इधर-उधर करके, देशसे जो वह मिठाई लाया था उसकी पोटली जंगलेके सींकचोंमेंसे सरस्वतीके हाथमें देकर बोला—"देशसे लाया हूँ सरसुती बेटी, ले जाओ इसे।" इसके बाद अपने घर-सम्बन्धी दो-एक असम्बद्ध बात कहकर राजाराम चला गया। अपने गाँवके कारीगरसे वह विचित्र रंगके काठके खिलौने बनवा लाया था, उन्हें पेटीसे निकालनेका उसे मौका ही न मिला।

दूसरे दिन राजाराम अपनी रोजकी पेटी सिरपर लिये नीले मकानके जंगलेके सामने आ खड़ा हुआ। नीचेके कमरेमें एक बड़ी चौकीपर बैठो सरस्वती कुछ पढ़ रही थी। राजारामने कोमल स्वरमें पूछा—"क्या पढ़ रही हो, सरसुती-बेटी?"

सरसुतीने मुँह उठाकर राजारामको देखकर हँसते हुए कहा—"कन्या-कौमुदी।" और दूसरे ही क्षण पूछ बैठी—'माने पूछा है, मिठाईके दाम कितने हैं?"

इस प्रश्नको सुनकर राजाराम सहम-सा गया, फिर सूखे मुंहसे बोला—"मासे कह देना बिटिया, कि मेरे घरकी बनी हुई मिठाई है, पैसे नहीं लगे हैं।"

सरसुतीने कहा—"अच्छा।"

इसके बाद, दो दिन तक उस रास्तेमें राजाराम दिखाई न दिया। तीसरे दिन, दोपहरको वह अपने नियमानुसार नीले मकान के जंगलेके सामने आकर खड़ा हो गया, बोला—"सरसुती बेटी!"

सरसुती सिलेटपरसे मुंह उठाकर एकदम पूछ बैठी—"दो दिन आये क्यों नहीं?"

राजारामके चेहरेपर आनन्दोल्लासकी लालिमा दौड़ गई।

तो सरसुतीने उसकी याद की है!

अनुपस्थितिका एक झूठा बहाना बताकर राजारामने बड़ी सावधानीके साथ कोमल स्वरमें कहा—"सरसुती-बिटिया! एक पुस्तक लाया हूँ, पढ़ोगी?"—कहकर सींकचोंमेंसे एक जिल्ददार पुस्तक 'सती सीता', चारों ओर ताककर, सरस्वतीकी चौकीपर रख दी।

सरस्वतीने उसे पास बुलाकर पूछा—"तसवीर हैं इसमें?"

राजारामने मुसकराकर कहा—"बहुत हैं! सीता, रामचन्द्र, हनूमान, सबकी तस्वीर हैं! मैं पढ़ना नहीं जानता, सरसुती, पहले तुम पढ़ लो, फिर मुझे पढ़कर सुनाना।"

सरस्वतीने कहा—"अच्छा। फिर तुम कल आओगे न?"

राजाराम एक उज्ज्वल आनन्द-हास्यके साथ आनेका वादा करके चला गया।

सरस्वती 'सती सीता' पढ़ती और राजाराम अपनी सिन्दूरकी पेटी गोदमें रखे खिड़कीके पास चबूतरेपर बैठा हुआ सुनता। बीचमें जो एक ईंटकी दीवारका व्यवधान था, श्रोता

और पाठिका दोनोंमेंसे किसीको भी उस बातकी सुध न रहती।

सहसा एक दिन वह व्यवधान बढ़ गया।

पाठ जब 'सीताका बनवास' तक आगे बढ़ चुका था, तब एक दिन राजारामने आकर देखा कि नीचेके उस कमरेमें उस चौकीपर सरसुतीके बदले दो भले आदमी साफ-सुथरे बिछौनेपर बैठे हुए जलपान कर रहे हैं। राजारामने आवाज दी—"चीना सिन्दूर लेउ, चीना सिन्दू-ऊ-र!"

दुमंजिलेकी एक खिड़की खुल गई। स्वरस्वतीने जंगलमें खड़े होकर बायाँ हाथ मुंहपर रखकर और दाहना हाथ हिलाकर इशारा किया कि आज वह नहीं पढ़ेगी।

राजाराम जिस रास्ते आया था, उसी रास्तेसे लौट गया। गलीकी मोड़पर सरस्वतीकी सहेली राधारानी उर्फ रधियाने राजारामको समाचार दिया कि 'सरस्वतीका जल्दी ही व्याह होनेवाला है, और आज उसे वे लोग देखने आये हैं।'

सरसुती-बिटियाका व्याह! यहाँसे फिर सासके घर! कितनी दूर है वह!

राजारामने दूरसे मुड़कर एक बार नीले मकानके दुमँजिलेकी बन्द खिड़कीकी ओर देखा; और फिर धीरे-धीरे मन्द-गतिसे चला गया।

तीन-चार दिन अपनी कोठरीमें ही बिताकर फिर उसी पेटीको सिरपर लादे उसी गलीकी मोड़पर आकर राजारामने आवाज दी—"चीना सिन्दूर लेउ, चीना सिन्दू-ऊ-र!"

उस दिन नीले मकानके दरवाजेपर नौबत बज रही थी।

राजाराम बहुत देर तक बाट देखता रहा कि ऊपरके खुले जंगलके पास शायद आज भी कोई आ खड़ी हो! लेकिन आज कोई नहीं आई।

दूसरे दिनसे फिर पहलेके नियमानुसार राजारामकी आवाज गलीमें सर्वत्र गूँजने लगी; सिर्फ नीले मकानके सामनेसे वह चुपचाप निकल जाता, हजार कोशिश करनेपर भी उसकी जबानसे एक शब्द भी नहीं निकलता।

३

रोजकी तरह उस दिन भी राजाराम चुपचाप चला जा रहा था।

इतनेमें उस नीले मकानके जंगलमेंसे एक बच्चेने आवाज दी—"ओ सिन्दूरवाले! ठहरो, जीजी बुला रही है।"

मारे खुशीके राजारामका कलेजा उछल पड़ा। मुँह फेरते ही उसने देखा कि नीचेके जंगलेमें सरस्वती खड़ी है। राजाराम मारे आनन्दके गद्‌गद्-कण्ठसे कह उठा—"कब आई सरसुती? मुझे मालूम नहीं था न, इसीसे—"

सरस्वतीने संक्षेपमें कहा—"आज।"

इसके बाद राजाराम अपने-आप ही घंटे-भर तक न-जाने क्या-क्या बातें करता रहा। अन्तमें बोला—"हाँ, तुम अपनी सिन्दूरकी डिबिया तो ले आओ, सरसुती-बेटी! बहुत बढ़िया सिन्दूर है मेरे पास—"

सरस्वतीकी सोनेकी डिबिया ऊपर तक सिन्दूरसे खूब ठसाठस

भरकर राजाराम घर चला गया। उसके बाद फिर उसने धीरे-धीरे विचित्र रंगोंकी काठकी डिबियोंमें सिन्दूरका उपहार लाना शुरू किया। साथ ही पाँवके महावरसे लेकर माथेकी बेंदी तक सुहागकी सभी चीजें दिखाई देने लगीं।

अबकी बार बरसातमें राजाराम देश नहीं गया।

अगहनमें सरस्वती जिस दिन सासके घर गई, राजाराम भी उसी दिन देश चला गया। वर्षाके दिनोंमें घर न आनेके कारण राजारामकी आर्थिक हानि हुई; और इसके लिए उसे स्त्रीसे लेकर छोटे लड़के तक सबने काफी फटकार बताई; लेकिन आर्थिक हानिकी उस बड़ी रकमने उसे जरा भी विचलित नहीं किया।

फागुनकी बयार चल रही है। पेड़ोंकी डालियोंमें मानो किसीने हरा रंग फेर दिया हो।

राजाराम कलकत्ता आया।

सरस्वती ससुरालसे वापस आई या नहीं, उसे कुछ खबर नहीं। नीले मकानके सामने खड़े होकर उसने आवाज लगाई—"चीना सिन्दूर लेउ, चीना सिन्दू-ऊ-र!"

कोई जवाब न मिला। राजाराम चुपचाप लौट पड़ा; मगर, फिर न-जाने क्या सोचकर वापस आया और ऊँचे स्वरसे कहने लगा—"चीना सिन्दूर लेउ, चीना सिन्दू-ऊ-र!"

बहुत ही धीमी-धीमी पैरोंकी आहट-सी सुनाई पड़ी। राजाराम काँपते हुए कलेजेसे जंगलेके पास आकर प्रतीक्षामें खड़ा हो गया। जंगला खोलकर सरस्वतीके छोटे भइयाने आकर कहा—

"तुमको इस गलीमें आनेके लिए माने मना कर दिया है, सिन्दूरवाले !"

अनजानमें कोई कसूर हो गया होगा, इस सोचमें राजारामका मुँह सूख गया। हिचक-हिचककर उसने कहा—"कि-यों ?"

इतनेमें दरवाजा खुला। दरवाजेपर सरसुती आ खड़ी हुई—उदास चेहरा लिये, सफेद कपड़े पहने ! देहपर एक भी गहना न था।

'सुहागका एक चिह्न तक नहीं !'

राजाराम चौंक पड़ा। उसके बाद सिरकी पेटी जमीनपर रखकर, उसपर बैठकर, अर्थ-हीन उद्भ्रान्त दृष्टिसे सामनेकी ओर देखता रह गया वह।

नीले मकानका दरवाजा बन्द हो गया।

होश आनेपर, राजाराम जब वापस जाने लगा, तब उसके सिरकी पेटी बीस मन भारी हो गई थी।

इसके बाद, फिर सात-आठ दिन तक उस गलीमें राजारामको किसीने नहीं देखा। आखिर एक दिन सहसा परिचित कण्ठस्वर सुनकर मैंने जंगला खोला, तो राजारामकी मूर्ति दिखाई दी। सिन्दूरकी पेटीकी जगह उसके सिरपर एक बड़ा-भारी फलोंका डला था। उसके भारी बोझसे झुका हुआ वृद्ध राजाराम पाठक पसीनेसे तराबोर होकर नीले मकानके सामनेकी गलीसे आवाज देता हुआ जा रहा था—"फल लेऊ, मा, पकै-ए—फल !"

सेब

सोमवारको सवेरे उठते ही छै बरसके लड़के बुधुआने अपने सोते हुए पिताके कानमें कहा—"बापूजी, आज सोमवार है; आज लाओगे बापूजी ?"

नटवरने फटी चटाईपर करवट बदलते हुए सोता-नींदीमें कहा—"लायेंगे।"

बच्चेका सारा चेहरा मारे खुशीके हँसीसे भर गया। झटपट उठकर वह बाहर दौड़ा चला गया; और अपने बराबरके बड़े बाबूके लड़के श्रीकान्तको पुकारकर बोला—"आज हमारे बापूजी भी लायेंगे, देखना शामको !"

पिता-पुत्रके इस गुप्त परामर्शका विषय था एक सेब। उस दिन श्रीकान्त सड़कपर खड़ा-खड़ा एक लाल रंगके फलपर बड़े उत्साहसे दाँत गड़ा रहा था। बुधुआ बहुत देर तक दरवाजेके फटे टाटके परदेमें से श्रीकान्तकी इस भोजन-लीलाको देखता रहा। फिर अन्तमें जब अपने लालचको सम्हालना उसके लिए दुःसाध्य हो गया, तो उसने बाहर आकर कहा—"तू क्या खा रहा है रे सिरीकान्त ?"

श्रीकान्तने निर्विकार-चित्तसे उत्तर दिया—"सेब !"

बुधुआ बोला—"थोड़ा मुझे भी—"

श्रीकान्तने फलके बाकी हिस्सेको झटपट मुँहमें डालकर कहा—"ऊँ-हुंक् !" उसके बाद चबाना खतम करके बोला—"मेरे बापू लाये हैं, तेरे बापू क्यों नहीं ला देते रे तुझे ?"

साढ़े-बाईस रुपये तनख्वाह पानेवाले मामूली क्लर्कका लड़का पाँच सौ रुपये तनख्वाहवालेके लड़केके इस जटिल प्रश्नका कुछ उत्तर न दे सका। वह अपना रोना-सा चेहरा लेकर पिताके पास पहुंचा। नटवर उस वक्त अपनी फटी कमीजपर तह किया हुआ मैला दुपट्टा डालकर नौ-बजेकी गाड़ी पकड़नेके लिए रवाना हो रहे थे; उनके सामने जाकर बुधुआने कहा—"बापूजी, मुझे एक सेब ला देना!"

"अच्छा"—कहकर नटवर चल दिया।

शामकी गाड़ीसे, दिआ-बत्ती जले, नटवर जब आफिससे घर लौट रहे थे, तो रास्तेमें चौराहेपर उन्हें बुधुआ मिला। और दिन तो बुधुआकी अब तक एक नींद हो जाती; आज सेबके लालचसे वह सोया नहीं। मा उसे जबरन बिछौनेपर सुला गई थीं, लेकिन ज्यों ही रेलकी सीटी उसके कानमें पड़ी, वह सोनेका बहाना छोड़कर, डरते-डरते रसोई-घरकी ओर देखकर, चल दिया स्टेशनकी तरफ। पिताको देखते ही दाहना हाथ पसारकर बोला—"बापूजी, मेरा सेब?"

नटवरने कहा—"अरे! भूल गया बेटा। कल ला देंगे, अच्छा।"

क्षणमें बुधुआका मुंह इतना-सा रह गया। एक छोटी-सी उसास लेकर उसने कहा—"अच्छा।"

नटवरने सच्ची बात नहीं कही। रास्तेमें मेवा-वालेकी दूकान देखकर बुधुआकी फरमाइश याद आई थी, लेकिन जेबमें एक

उधार नहीं मिल सकते थे, लेकिन कल चार आने कहाँसे जुटेंगे, उन्हें नहीं मालूम था। सिर्फ निराश पुत्रको तसल्ली देनेके लिए फिर उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि कल देंगे।

दूसरे दिन भी बुधुआने सारा दिन शामकी प्रतीक्षामें बिता दिया। आज तो सेब आ ही जायगा, इसमें उसे रंचमात्र भी सन्देह न था। बाहरके दरवाजेके पास वह खड़ा था; दूरसे पिताको देखते ही दौड़कर उसने 'बापूजी' का हाथ पकड़कर कहा—"बापूजी, सेब ?"

नटवरने एक क्षणके लिए मुँह बनाया, फिर हाथ जेबमें डालनेके साथ ही बोल उठे—"अरे, कहाँ गया ! कहीं गिर गया मालूम होता है। हाँ, गिर ही गया कहीं !"

इसके सिवा कोई उपाय न था बुधुआको बहलानेका। लेकिन इस छलका अभिनय करते हुए नटवरको आँखोंमें आँसू भर आये।

बुधुआने 'बापूजी'का हाथ छोड़ दिया। उसके बाद साथ छोड़कर कुछ दूर आगे बढ़ गया, फिर लौटकर बोला—"ऐं बापूजी, कितना बड़ा था वो ?"

नटवरने उंगलियोंको फैलाकर एक कल्पित माप दिखा दिया।

बुधुआने कहा—"ओः, खूब बड़ा था बापूजी ! ऐं बापूजी, फिर कल लाओगे न ?"

परसों वेतन मिलनेका दिन है। नटवरने कहा—"कल नहीं बेटा, सोमवारको ला देंगे, अच्छा।"

बुधुआने प्रश्न किया—"सोमवार कब है बापूजी ?"

"कलका दिन छोड़कर परसों सोमवार है। दो ला देंगे, अच्छा!"

बुधुआ फूला न समाया, बोला—"उतने ही बड़े लाल-लाल लाना, बापूजी।"

नटवरने कहा—"अच्छा।"

बुधुआ नाचता हुआ घरके आँगनमें पहुंचा, बोला—"मा, बापूजी मुझे दो सेब ला देंगे कलकत्तासे, हाँ! खूब बड़े-बड़े, लाल-लाल!"

रसोइ-घरसे बुधुआकी माने पतिकी ओर निहारकर कहा—"देखा! अभी मिले नहीं सो तो यह हाल है, मिलनेपर न-जाने क्या करेगा!"

बहूबाजारके चौराहेपर एक मेवाफरोश काबुलीकी दूकानपर जाकर नटवरने छाँट-छाँटकर बड़े-बड़े दो सेब अलग निकाल लिये, और उनका मोल तय करके दूकानदारसे कहा—"ये दोनों अलग रख देना, आफिससे लौटते वक्त लेता आऊँगा।"

सेब दोनों दूकानदारके बढ़ियासे बढ़िया सेबोंमेंसे थे। बहुत दिनोंसे चाहे हुए दोनों फल जब वे बच्चेके हाथोंमें देंगे और उससे बच्चेका चेहरा मारे खुशीके खिल उठेगा, तबकी कल्पना करके नटवरका सूखा हुआ चेहरा मारे खुशीके चमक उठा।

तीन बजते ही, नटवर उठकर तनख्वाहका बिल लेने बड़े बाबूके कमरेकी ओर चल दिये। बड़े बाबूने बिल उठाकर नटवरके सामने पटक दिया। बिल देखते ही नटवरकी छातीमें धक्का बैठ गया। बिलके एक किनारेपर, पूरा काम न करनेके

बहानेसे, नटवर दत्तकी तनखा देना स्थगित रखनेका हुक्म लिखा हुआ था। लाल पेन्सिलके इन अंगरेजी हरूफोंने मानो हथौड़ोंसे उनकी पसलियोंको एकदम चकनाचूर कर डाला। कुछ देर चुप रहकर नटवरने रुँधे हुए गलेसे कहा—"बड़े बाबू!"

बड़े बाबूने कहा—"भई, मैं कुछ नहीं कर सकता। साहब बड़ा कड़ा आदमी है, तुम तो जानते ही हो? साहबके पास जाओ तुम।"

बिल उठाकर नटवर जमीन-आसमानकी सोचता हुआ बड़े साहबके दरवाजेके पास जाकर खड़ा हो गया। चपरासीके जरिये खबर पहुंचानेपर भीतरके हुक्म आया—"कम इन।" नठवरने लम्बा सलाम ठोंककर कहा—"हुजूर, मेरी तनखा—"

साहब उस समय वालटेयरको अपनी पत्नीके लिए आगामी बड़े दिनका उपहार भेजनेकी तैयारीमें लगे हुए थे, पूरी बात सुननेको उनके पास वक्त कहाँ था? अंगरेजीमें कहा—"नहीं हो सकता। कामसे जी चुरानेवालेके लिए यहाँ माफी नहीं है, जाओ।"

नटवरके भीतरके आँसू बाहर निकल आये, वह रो उठा। बोला—"हुजूर, कल ही सब, दिन-रात मेहनत करके, सब काम पूरा कर दूँगा हुजूर!"

साहबने चिट्ठीपरसे कलम उठाकर कहा—"तो परसों तनखा मिल जायगी।"

"हुजूर, एक रुपया, कम-से-कम आठ आने पैसे मिलनेका हुक्म—"

"एक पैसा नहीं, जाओ।"—कहकर फलोंकी दो टोकरियाँ टेबिलपर रखकर उनपर लेबिल लगा दिये—'फॉर हैरी' और 'फॉर नेली'। हैरी साहबका लड़का है और नेली लड़की; दोनों उस समय हवा बदलनेके लिए माके साथ वालटेयर गये हुए थे।

एक गहरी साँस लेकर नटवर बाहर चला आया; और बिल बड़े बाबूके हाथमें देकर बोला—"कुछ नहीं हुआ।"

एक बार सोचा कि बड़े बाबूसे एक रुपया उधार ले ले, लेकिन सहसा मानो सारे संसारपर उसे कैसी एक घृणा-सी हो गई, इच्छाको कार्य-रूपमें परिणत करनेकी प्रवृत्ति न हुई। रास्ते भर सिर्फ बुधुआकी ही बात याद आने लगी। कल इतवार था, सारे दिन बुधुआ उन्हें अपने वादेकी याद दिलाता रहा है। वह बेचारा आज तमाम दिन राह देखता रहा होगा—'बापूजी सेब लाते होंगे। अब तक अवश्य ही वह स्टेशनकी सड़कपर खड़ा-खड़ा प्रतीक्षा कर रहा होगा। पिताको देखते ही मारे खुशीके फूलकर, बड़ी आशासे दौड़ा आयेगा,—उसके बाद ?

सोचते-सोचते नटवर कब बहूबाजारके चौराहेपर आ पहुंचा, उसे जरा भी खयाल नहीं। अकस्मात् एक 'झाँका-मुटिया' (बोझ उठानेवाले मजदूर) का धक्का लगा, तब होश आया कि बहूबाजार आ गया। सड़कके किनारे चौराहेपर वह दूकान थी, मेवावालेकी। नटवर धीरे-धीरे रास्ता पार होकर उस दूकानके सामने जाकर खड़ा हो गया, बड़े गौड़से उन सेबोंको देखता रहा। बुधुआकी बात याद आई, ऐसा मालूम हुआ कि

जैसे एक नंग-धड़ंग बच्चा बड़े उछाहसे हाथ फैलाकर उनकी तरफ देखकर कह रहा है—"बापूजी, सेब ?"

भावोंके आवेशमें स्वप्नाविष्टकी तरह नटवरने सेब दोनों उठा लिये।

क्षण-भर बाद ही किसीने आकर उसकी कलाई पकड़ ली; और लगा चिल्लाने—"चोर! चोर!!"

उसके बाद और कुछ याद नहीं पड़ता। जब होश आया तो नटवरने अपनेको थानेकी हवालातमें पाया।

करीब पाँच बजेसे बुधुआ स्टेशनके रास्तेमें खड़ा था। साड़े पाँच बजेकी गाड़ी भक-भक करती हुई स्टेशनमें घुसी। अब तो मारे खुशीके बच्चेका दिल बाग-बाग हो गया। उसके बाद जब मुसाफिर लोग रास्तेसे चलने लगे, तब तो वह अधीर हो उठा। प्रतिक्षण एक-एक कदम आगे बढ़ने लगा। प्रत्येक दूरका आदमी उसे 'बापूजी'-सा दीखने लगा, बड़े आग्रहसे आगे बढ़कर पथिकके मुँहकी ओर ताककर फिर वह हताश होकर पीछे हट आता।

इसी तरह एक घंटा बीत गया; और अन्तमें जब रास्तेमें चलनेवाला कोई न रहा, तब अपना-सा मुँह लेकर वह घर लौट आया। मासे बोला—"बापूजी आये नहीं अम्मा। बापूजी जब आ जायँ, तब तू मुझे जगा देगी, ऐं अम्मा?"

इसके बाद नौ बजेकी गाड़ी थी। आज तनख्वाह मिलनेका दिन है; शायद चीज-वस्त खरीदने-लानेमें देर हो गई होगी, यह सोचकर हेमवतीने कहा—"अच्छा, तू सो जा, मैं जगा दूंगी।"

रातको जब बुधुआ स्वप्न देख रहा था कि उसके फटे कुड़तेकी दोनों जेबें सेबोंसे भरी फूल उठी हैं, तब दरोगा साहब रिपोर्ट लिखना खतम करके नटवर दत्तको चोरीके अपराधमें कोर्टमें हाजिर होनेका आर्डर लिख रहे थे।

दुलदुल-घोड़ी

१

डाक्टरने चलते वक्त कहा—"बिना कुछ खिलाये इसे जिलाना मुश्किल है। जैसे बने, कुछ खिलाना—"

महेशने डाक्टरके पैर पकड़ लिये और कहा—"जैसा आप ठीक समझें, कीजिये डाक्टर साहब, सब बेच-खोचकर आपका देना चुका दूंगा। मेरे बच्चेको बचा लीजिये!"

डाक्टरने उदास सूखी हँसी हँसकर कहा—"क्या किया जाय बताओ, कोशिश तो भरपूर की जा रही है,—देखते ही हो। कुछ खाता ही नहीं,—कल सवेरे मैं फिर आऊँगा।"

लड़केकी पाली हुई बकरी बेचकर जो रुपये लाया था उन्हें डाक्टरके पैरोंके पास रखकर महेशने फिर रोते हुए कहा—"अच्छी दवा देते जाइये, डाक्टर साहब! जितनी भी कीमत हो, मैं—"

डाक्टरने महेशका हाथ पकड़कर उठाते हुए कहा—"जरूरत

मालूम पड़े, तो रातको ही खबर देना। आज मैं घरपर ही रहूँगा।"

इसके बाद डाक्टरने बेहोश बच्चे-मरीजकी ओर देखकर एक गहरी साँस ली और चला गया।

घरके एक कोनेमें, बच्चेकी खाटके पास बैठी हुई महेशकी स्त्री चुपचाप आँसू पोंछ रही थी। महेशने उसके सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—"रो मत, लल्लूकी मा, रोना खराब है। पंखा लेकर जरा सिरहानेके पास बैठ जा। मैं जरा बाजार हो आऊँ।"

२

'नित्यानन्द प्रिण्टिग वर्क्स' के कम्पोजीटर महेशका इकलौता लड़का है माखनलाल उर्फ लल्लू। तीन महीनेकी तनख्वाह जोड़कर श्रीवृन्दावनमें राधारानीको सोनेकी नथ चढ़ानेके बाद तब कहीं बड़ी उमरमें, पाँच वर्ष पहले, महेशके यह लड़का पैदा हुआ है। बुढ़ापेकी सन्तान ठहरी; लाड़-प्यारका क्या कहना! जन्मसे ही लल्लूकी तन्दुरुस्ती खूब अच्छी थी। दस-बारह दिन हुए, यही पहले-पहल उसे बुखार आया है। बड़ी कठिनाईसे जोड़े हुए चालीस रुपये और स्त्रीका एकमात्र गहना, दो तोलेकी हँसुली, गिरवी रखकर जो रुपये लाया था उन सबको खर्च करके महेशने लड़केका इलाज कराया। कल बच्चेकी पालतू बकरी भी बेच आया। अब?

बच्चेको बीमारीमें खतरनाक बात यह है कि वह खाता कुछ नहीं, खानेसे उसे चीढ़-सी हो गई है। शुरू-शुरूमें तो वह कुछ

खाता-पीता भी था; पर आज तीन-चार दिनसे पथ्य बिलकुल ही बन्द है। कुछ खानेको दिया जाता तो वह 'दुलदुल-घोड़ी' की रट लगाने लगता है। दुलदुल-घोड़ी कौन-सी अजीब चीज है, महेशके कुछ समझ हीं में न आया। बहुत खोज लगाई; पर कहीं मिलती ही नहीं। अंगरेजी बाजारसे तरह-तरहके खिलौने लाया; पर लल्लूने उन्हें बापके हाथसे छीनकर दूर फेंक दिया।

जगह-जगह व्यर्थकी खोज करनेके बाद आज महेश 'दुलदुल-घोड़ी' खोजने चीना-बाजार गया था। तमाम बाजार ढूँढ़ मारा, परेशान होकर अन्तमें डाक्टरके साथ तीन बजे बेचारा घर लौट आया।

लल्ला उस समय होशमें था; बापको देखते ही दोनों कमजोर बाहोंको बढ़ाकर क्षीण-स्वरमें बोला—"चाचा, दुलदुल-घोड़ी!" महेशने चद्दरके भीतरसे भेड़की ऊनका बना एक खिलौना निकालते हुए कहा—"ये ले बेटा!"

माखनने पहले तो खिलौना हाथमें ले लिया; फिर घुमा-फिराकर, अच्छी तरह देखकर दूर फेंक दिया, बोला—"धुत्!"

महेशका मुँह इतना-सा निकल आया। वह बच्चेकी छातीके पास झुककर बड़े प्यारसे बोला—"जरा दूध पी ले, बेटा! अभी जाकर दूसरी नई ला दूंगा।"

माखनने झुंझलाकर कहा—"नई!"

डाक्टर साहब, बहुत देर तक देख-भाल करनेके बाद, जाते समय वही कलवाली बात कह गये—"जैसे बने, पथ्य तो देना

ही चाहिए। नहीं तो—" फिर बोले—"आज सरदी ज्यादा है, जरा होशियार रखना, महेश !"

डाक्टरकी बात सुनकर पति-पत्नी एक दूसरेका मुंह ताकने लगे, किसीके मुँहसे आवाज नहीं निकली। डाक्टरके चले जानेपर लल्लाकी मा फूट-फूटकर रोने लगी, और रोते-रोते जमीनपर पड़ रही—"छातीसे खूनका महावर बनाकर तुम्हारे पाँव रंगूंगी, मइया राधारानी ! मेरे बच्चेको बचा दो, देवी !"

बच्चा शामसे लगातार बायमें बकते-बकते अन्तमें थककर सो-सा गया था। माता-पिता बच्चेके पास चीड़की टूटी पेटीपर सन्न बैठे हुए बीमार बच्चेकी ओर एकटक देख रहे थे ; उनके चेहरेपर मूक आशंका छाई हुई थी। मा अपने मैले आँचलसे बार-बार आँसू पोंछ रही थी, और बाप मंथन करके 'दुलदुल-घोड़ी' का आविष्कार करनेकी कोशिश कर रहा था। इतनेमें लल्लाके ओठ हिल उठे। मा-बाप दोनों एकसाथ बच्चेके चेहरेकी ओर झुक पड़े ; सुना, बच्चा कह रहा है—"आ जा, दुलदुल-घोड़ी आजा, दुलदुल—"

महेशकी आँखोंके सामनेसे मानो एक परदा-सा हट गया ; और एक दिनकी बात याद आ गई ; उस दिन भी इसी तरह हाथ हिलाता हुआ 'दुलदुल-घोड़ी' बुला रहा था। बड़ी तेजीसे महेश उठ खड़ा हुआ, बोला—"मैं अभी लौटता हूँ, लल्लूकी मा ! तू घबराना मत !"

३

एक मीलके करीब पागलकी तरह चलनेके बाद महेश जब मीर-साहबकी ड्योढ़ीके पास जाकर खड़ा हुआ, तब पौ फट चुकी थी। दरवान हरवंश पाँडे झोके ले रहा था; पैरोंकी आहट सुनकर कंधेपर बन्दूक रखकर बोला—"कौन है ?"

महेशने दरवानके दोनों हाथ दबाते हुए कहा—"दरवानजी, सरकारके साथ मुलाकात—"

दरवानने विना कुछ सुने ही कहा—"आठ बजे !"

महेश—फूट-फूटकर रोने लगा; बड़ी मुश्किलसे बोला—"आठ बजे तक बचेगा नहीं, दरवानजी !"

महेशकी रोनेकी आवाज शायद भीतर तक पहुंच गई थी। ऊपरके बरण्डेमें से गम्भीर स्वरमें किसीने पूछा—"कौन है, दरवान ?"

हरवंश बोला—"मालूम नहीं हुजूर ! रोता है।"

पूर्ववत् गम्भीर स्वरमें हुक्म आया—"ले आओ !" कहते हुए मीर-साहब खुद शराबका गिलास हाथमें लिये नीचे उतर आये। महेशने भीतर घुसते ही देखा, खुद मीर साहब हैं! मुहल्लेमें ऐसा कोई आदमी नहीं, जो जमींदार-घरानेके इस भीषण प्रकृतिके मालिकसे डरता न हो। महेश हड़बड़ा गया। उसके मुंहसे आवाज नहीं निकली। चुपचाप खड़ा हुआ आँखें पोंछने लगा। मीर साहबने अपने विपुल शरीरको धप्पसे एक बेञ्चपर पटकते हुए कहा—"अच्छा, बोल, क्या बोलता है ?"

महेशकी छाती धड़कने लगी। फिर भी उसने माखनकी जन्म-कहानी कह-सुनाई। कितनी मन्नतें मानीं, पूजा-पाठ और होम कराये, तब कहीं जाकर लड़का हुआ था। अन्तमें अचानक इस बीमारीने घर दबाया। सर्वस्व खर्च करके इलाज कराया, फिर भी कुछ नतीजा नहीं निकला। आज ही सब खतम होनेवाला है; "हाँ, अगर हुजूर थोड़ी देरके लिए गरीबके घर—तो—" यहाँ तक कहते-कहते महेशका गला रुँध आया। उससे आगे कुछ कहा नहीं गया।

गिलासको ओठोंके पाससे हटाते हुए मीर साहबने कहा—"मेरे जानेसे क्या होगा भई ?"

तब महेशने लल्लाके 'दुलदुल-घोड़ी' मांगनेका हाल विस्तारके साथ कह सुनाया। उसके बाद बोला—"शहरका कोना-कोना छान डाला है, हुजूर ! कल रातको अचानक याद आ गई, उस दिनकी,—हुजूर दुलदुल—" कहते कहते महेश डरकर चुप रह गया।

मीर साहबने कहा—"हाँ, फिर—"

महेश हाथ जोड़े हुए मीर-साहबके पैरोंकी तरफ आँखें किये कहता गया—"लल्लाने मुहर्रमके रोज दुलदुल-घोड़ी देखी थी। हुजूर उस दिन— दूसरे दिनसे बुखार आने लगा। हुजूरको देखते ही वह अच्छा हो जायगा,—हुजूरका बचा हुजूरको ही याद कर रहा है !"

मीर-साहब कहकहा मार कर हँस पड़े; बोले—"अच्छा ! चल देखूं !"

४

मीर-साहबको साथ लेकर महेश जब घर पहुंचा, तब बचा होशमें था। लल्लाके पास मुंह ले जाकर महेशने कुछ कहा। लल्लाने दोनों आँखें फाड़कर कहा—"कहाँ ?"

महेशने मीर-साहबकी ओर इशारा किया।

मीर साहबकी ओर देखकर लल्ला बहुत ही क्षीण स्वरमें बोला—"दुलदुल-घोड़ी ! नहीं—ये नहीं।" कहकर उसने मुँह फेर लिया।

मीर-साहब बहुत देर तक बच्चेके मुंहकी ओर एकटक देखते रहे। फिर बच्चेके सिरपर हाथ फेरते हुए बोले—"हम दुलदुल-घोड़ी ला देंगे, बेटा ! अभी जाते हैं घबरा मत।"

महेशकी स्त्रीने मीर-साहबके पैरों पड़कर कहा—"कसूर माफ करना, हुजूर ! मा-बापका मन ठहरा—"

करीब सात बजे डाक्टरने आकर नाड़ी देखी; और चलते वक्त बड़ी गम्भीरताके साथ कहा—"कमजोरी बहुत है, महेश ! मैं आध घंटेके भीतर फिर आऊंगा। तुम पानी गरम कराओ।"

डाक्टरके चेहरेका रुख देखकर महेशकी छातीका खून मानो पानी हो गया। स्त्री रसोईमें थी, उसे बुलाना ही चाहता था कि इतनेमें दरवाजेके सामने गाड़ी ठहरनेकी-सी आवाज सुनाई दी। साथ ही—"दुलदुल,-घोड़ी, दुलदुल-घोड़ी आ गई !" कहते हुए मीर-साहब घरमें घुस आये। उनके सिरपर भारी-भरकम हरी पगड़ी थी, बदनपर दो-चार थानोंसे बना हुआ एड़ी तक नीचा घाघरानुमा जामा था और पैरोंमें घुंघरू बज रहे थे।

महेश देखकर दंग रह गया। लल्लाने मुंह फेरकर देखा, और ताली बजाकर हँसता हुआ कहने लगा—"आ-आ, दुलदुल-घोड़ी, आ-आ!"

मीर-साहबने दोनों हाथोंसे बच्चेको उठाकर छातीसे लगा लिया; और अपने जामेकी जेबमेंसे अंगूरोंका एक गुच्छा निकालकर बच्चेके हाथमें देकर कहा—"खाओ बेटा!"

आध घंटे बाद डाक्टर साहब आये; और यह तमाशा देखकर सन्न रह गये, खुद जमींदार साहबकी गोदमें बैठकर लल्ला हँस-हँसके बातें करता हुआ अंगूर खा रहा है। और, महेश और लल्लूकी मा दोनों घरके एक कोनेमें खड़े हुए मारे खुशीके फूले नहीं समा रहे।

तीर्थमें

१

तीर्थ है, बहुत प्राचीन तीर्थ। जाग्रत देवी हैं, बड़ा-भारी मन्दिर है, सामने खूब लम्बा-चौड़ा दालान है, दालानमें मंडप है। मंडपमें तेतीस ब्राह्मण तेतीस कुशासनोंपर पंक्तिवार बैठे हुए हैं। गीता, चंडी और श्राद्धके मंत्रोंने एकसाथ मिल कर एक दुर्बोध्य शब्द-लोककी सृष्टि कर डाली है।

सवेरेका वक्त है, आठ बजे हैं। पंडोंके घरके लड़के नहा-धोकर यात्री पकड़नेके लिए सड़कके चौमुहानेपर टहलते हुए बीड़ी फूँक रहे हैं। जवाकुसुमकी माला गलेमें, सिरपर

बहारदार जुल्फें और माथेपर सिन्दूरकी टीकी लगाकर बकरे बेचनेवाले छुरे पैने कर रहे हैं। शनिवार है आज। बकरोंका भाव तेज हो गया है।

२

नौ बजे। तीर्थयात्रियोंका आना शुरू हो गया। छकड़े, घोड़ा-गाड़ी, टैक्सी, रिक्सा, लैण्डो, तरह-तरहके वाहनोंपर सवार हो-होकर भक्तगण आने लगे। "माई, ओ माई, एक अधेला दे जा माई!" "लंगड़े-लूलेको—", "अन्धेको—", "अरे, अरे, इधर, इधर! हमारी दुकानपर बैठिये, आइये!" "माला चाहिये? बकरा? कितने?" "वाह जी वाह, हमारे पुराने गाहक को तुम खींच रहे हो!" "अरे, बजाओ रे बजाओ, आरतीका बाजा बजाओ!" पूजा आरम्भ हो गई।

रामू मालीका लड़का बीमार है, सन्निपात हो गया है, बाय आ गई है, वह माताके मन्दिरमें मन्नत चढ़ाने आया है। उसे नहाये करीब घंटा-भर हो गया, पूजा चढ़ानेका उसे मौका ही नहीं मिला। निर्विघ्न पूजा चढ़ जाय तो लड़का चंगा हो जायगा, इसी आशामें खड़ा है।

"रास्ता छोड़ो! रास्ता छोड़ो!!" रामू हट गया, रास्ता छोड़ दिया। बिलासराय पुरोहित आये, आज उनकी पारी है। गलेमें रुद्राक्षकी माला है। बाँहमें आधी दर्जनके करीब छोटे-बड़े कई तरहके ताबीज सोनेकी कड़ीमें लटक रहे हैं। ललाटपर रक्त-चन्दनकी रेखा है। रामूने साष्टांग प्रणाम

करके कहा—"पुरोहितजी, जरा मेरी—" "खड़ा रह, कितनेकी है तेरी ?" "सवा रुपयेकी।" "खड़ा रह।"

३

मन्दिर है, बीचमें कालीकी मूर्ति विराजमान है। दोनों ओर चरबीके घीके दीए जल रहे हैं। जवाकुसुम और विल्वपत्रों से माता गले तक ढक गई हैं। मूर्तिके ऊपर बिजलीकी बत्ती है, सामने बड़ा-भारी पीतलका थाल है, जिसमें पैसे और दुअन्नी-चौअन्निओंका ढेर लगा हुआ है।

शोर-गुल होने लगा। "कहाँ जा रहे हैं ? द्वार-प्रणामी देते जाइये।" 'बाबा नकुलनाथके नामपर एक पैसा।" "पञ्चायत का पैसा नहीं दिया ?" "लीजिये चरणामृत, दीजिये पैसा दीजिये।" "पढ़ो बेटी, सर्व मंगल मंगलां,—दक्षिणा चार पैसा, कल्याण हो !" "बस, अब उठो-उठो, हमारे यात्री खड़े हुए हैं, तुम तो अकेली ही घंटा-भरसे सिर धुन रही हो।" बुढ़िया प्रवासी सन्तानके कल्याणके लिए प्रार्थना कर रही थी, सटपटा कर उठ बैठी। "आओ जी आओ, चटपट खतम करो। पढ़ो, काली काली महाकालीम्,—अच्छा हो गया। लो सिन्दूर और विल्वपत्र, लड़केके माथेपर लगाना। और दो बकरेकी मन्नत करना ; लड़का अच्छा हो जायगा। और हमें खबर देना, मन्नत चढ़ानेके दिन हम जाकर ले आयेंगे।"

दस बजते ही वलिदानके बाजे बजने लगे, बहुतसे मस्तक नमस्कारकी भंगिमामें नत हुए, साथ ही दस-बारह पशु आतंकसे आर्तनाद कर उठे।

बलि हो गई ; पूजा अभी तक नहीं चढ़ पाई। आशंकासे रामूकी छाती काँप उठी। अन्तरके आग्रहसे रामू मन्दिरकी सीढ़ियोंपर दो ही कदम बढ़ा था कि इतनेमें पूजारीने गरजकर कहा—"अरे रे, गजब हो गया ! उतर जा, उतर जा ! अरे, अभी भोग नहीं लगा है। क्या सब अनाचार फैला रक्खा है !"

रामू अपना-सा मुँह लिये सीढ़ियोंपरसे उतरकर नालीके पास आकर खड़ा हो गया। नालीमें उस समय रक्तकी गंगा बह रही थी।

४

"अरे बजाओ रे, बजाओ, भोगका बाजा बजाओ।"

शहनाई ढोल ताशे सब एकसाथ बज उठे। 'कड़ कड़बड़-कड़बड़ डम, नक पों—'

"हटो सब, हटो हटो, भोग आ रहा है !"

रामू नालीके पाससे हटकर एकदम दालानमें जाकर खड़ा हो गया।

'भों, घर्र-र-र !' नीले रंगकी एक बड़ी मोटर-गाड़ी आ गई।

"कोई आये मालूम होते हैं ! हट जाओ सब, रास्ता छोड़ दो, हटके खड़े होओ ! मेरी जपकी माला उठाकर रख देना भई !"—विलासराय पुरोहित आँगनमें उतर आये।

मोटरसे उतरी एक अनवगुण्ठिता भूषण-मण्डिता नारी-मूर्ति। दीर्घ रात्रि-जागरणसे नेत्र लाल हो रहे हैं, भूरे रंगकी रेशमी साड़ी पहने हुए हैं, हाथमें बेलाकी माला है।

"कुसुम बाईजी आई हैं, कुसुम बीबी ! भोगका थाल हटा कर जानेको रास्ता कर देना पण्डितजी ! आइये, आइये !" विलासराय पुरोहित गाड़ीके पास आकर खड़े हो गये। उनके पीछे-पीछे कई दुकानदार भी आ पहुंचे।

"माजीको बकरे चहिये न ? कितने ?"

"श्राद्ध करायेंगी या चण्डी-पाठ ?"

"आज दिन अच्छा है मा, स्वस्त्ययनका समान ठीक कर दूं ?"

"गंगा नहायेंगी न ? या स्नान करके आई हैं ? तिलक तो अभी हुआ ही नहीं है ! अरे चन्दन ला रे, लाल-चन्दन और नाम-छाप उठा ला। दरवाजेके पाससे सबको हटा क्यों नहीं देते, पंडितजी ! कार्पेटका आसन बिछा दो।"

सामने विलासराय पुरोहित हैं, दोनों बगल पुजारी, पीछेसे चार ब्राह्मण चार थालोंमें पुजाकी सामग्री ला रहे हैं। सुन्दरी मन्दिरमें घुस गई।

बारह बज चुके हैं। पशुओंके खूनकी धारा सूखकर काली पड़ गई है। लड़केको पथ्य देनेका समय हो गया। रामू चंचल हो उठा।

कुसुम बीबी जप कर रही हैं ! जप खतम होनेकी प्रतीक्षामें विलासराय पुरोहित बरामदेमें खड़े हैं। आँगनमें माली, बकरेवाला और बाजेवाले बड़े आग्रहसे बाट देख रहे हैं।

माताके भोगपर मक्खियाँ भिनक रही हैं। कुसुम बीबीकी मन्नत क्या है, अभी किसीको पता नहीं, लिहाजा भोग लग कैसे सकता है ! असम्भव बात है।

'गुड्डुम !' किलेसे एक बजेकी तोप छूटी।

अब ठहरनेसे काम नहीं चलेगा। दो दिनकी संचित कमाईके बदले लिया हुआ पूजाका सामान एक लंगड़े-लूले भिखारीको देकर, नालीसे एक रक्त-चर्चित विल्वपत्र उठाकर रामूने उसे माथेसे लगाया और चल दिया घरको। जाते समय बार-बार मन्दिरकी तरफ देखता हुआ रामू माली हाथ जोड़कर नमस्कार करते-करते मातासे क्या कह गया, सो वही जाने।

चम्पा

१

जिसने उसका नाम चम्पा रखा था, उसने जरा भी भूल नहीं की। चम्पाके रंगसे उसकी देहका रंग बिलकुल मिलता-जुलता है, जरा भी फर्क नहीं। पर चम्पाकी तकदीर थी फूटी। जब वह दस वर्षकी थी, तब उसका ब्याह हुआ था गोपाल गुसाँईसे, और तेरह वर्षकी उमरमें बेचारी विधवा हो गई। तब उसकी मा मौजूद थी; बुढ़िया फिरसे चम्पाका ब्याह कर देना चाहती थी, मगर लड़की राजी न हुई। उसके बाद मा गई मर। चम्पा भी बिना किसी उद्वेगके दिन काटने लगी; और अब वह बीस वर्षकी हो आई है।

एकदम बिना किसी उद्वेगके दिन काटे हैं, यह कहना, जरा झूठ बोलना है। उसके रूपके पुजारियोंकी कमी न थी; नन्दू

अहीरसे लेकर छदामी गुसाँई तक सभी एकआध बार उसकी कृपाके प्रार्थी हुए हैं और बुरी तरह फटकार खाकर मन मसोसकर रह गये हैं। अब तो उसके पास कोई फटकता तक नहीं, व्याहके लिए कहना तो दूर रहा। एक तो चम्पाके धरम-पिता गाँवके जमींदार भूपालसिंहका डर, उसपर चम्पाकी फटकार, ये दो बातें पाणिप्रार्थियोंके आक्रमणसे चम्पाकी रक्षा कर रही हैं।

चम्पाको कुछ-कुछ पढ़ना-लिखना भी आता है। गाँवके प्राइमरी स्कूलमें पाई हुई विद्याको वह लगातार 'रामायण' और 'महाभारत' पढ़नेमें लगाकर बहुत-कुछ आगे बढ़ा ले गई है। चम्पा खूब सबेरे उठकर मुरमुरे भूनकर उन्हें रूपगाँवके बाजारमें बेचने जाती; मुरमुरे बेचकर शामको घर लौटती, फिर अपनी साथिन जमींदार-घरकी बुढ़िया महरी लखियाको श्रोत्री बनाकर आप 'महाभारत' पढ़ने बैठ जाती। रोजमर्रा उसका यही काम है; और इसीमें वह खुश है।

२

उस दिन, सावनके बादल उमड़ रहे थे, चम्पा जल्दी-जल्दी मुरमुरे बेचकर घर लौट आई। घरके बाहरवाले आँगनमें नीमकी छायाने अन्धकार कर रखा था। आँगनमें पाँव रखते ही चम्पा चौंक पड़ी; देखा, बरामदेमें कोई पड़ा सो रहा है! अँधेरेमें साफ-साफ दिखाई नहीं दिया।

उसने पूछा—"कौन है?"

कोई जवाब नहीं।

चम्पा मुरमुरेकी डलिया रखकर भीतर गई, दीआ जलाया ; और फिर हाथमें दीआ लेकर बाहर आई।

जो पड़ा सो रहा था, चम्पाने उसे पहले कभी नहीं देखा।

बीस-बाइस वर्षका युवक आँखें मीचे पड़ा था। चम्पाने उसके पास जाकर फिर पूछा—"कौन हो तुम ?"

युवकने आँखें खोलीं।

बोला—"पानी !"

चम्पाने पूछा—"कौन हो तुम ? क्या हुआ तुम्हें ?"

युवकका कंठ सूख गया था।

बोला—"पानी ! प्यास—"

चम्पा समझ गई, आगन्तुक अस्वस्थ है। लोटेमें पानी ले आई ; पिलाया। देहसे हाथ लगाकर देखा, तत्ता तवा ! बड़े जोरका बुखार है।

पूछा—"तुम हो कौन ? यहाँ कैसे आये ?"

युवकने जो-कुछ कहा, उसका संक्षिप्त सार यह था—उसका नाम है बनवारी। महेशपुर जा रहा था, रास्तेमें बुखार आ गया, जा न सका, इसलिए यहाँ पड़ रहा, बुखार उतरते ही चला जायगा। महेशपुर रूपगाँवसे दो कोस है।

चम्पाने पूछा—"वहाँ तुम्हारे कोई रहते हैं ? आदमी भेजकर खबर पहुंचा दूँ ?"

युवकने कहा—"कोई नहीं। मन्दिर देखने जा रहा था।"

चम्पा जरा-कुछ घबरा-सी गई ; बोली—"तो ? यहां तुम्हारी देख-भाल कौन करेगा ? आये कहाँसे हो तुम ?"

युवकने कहा—"देख भालकी कोई जरूरत नहीं होगी। बुखार उतरते ही मैं चला जाऊंगा। तुम जाओ।"

स्वरमें जरा तीव्रता थी, चम्पा ताड़ गई। उसने फिर कुछ नहीं पूछा।

"सिरहानेके पास लोटेमें पानी रखा है, प्यास लगे तो पी लेना।"—कहकर चम्पा भीतर चली गई।

रातके करीब नौ बजे होंगे, चम्पा एक बार बाहर आई। बनवारी तब बुखारमें पड़ा बड़बड़ा रहा था; शायद बायमें था वह।

चम्पाने कुछ ध्यान नहीं दिया, पर ऐसी बुखारकी हालतमें एक आदमीको बाहर पड़ा रहने देना···? लेकिन एक अपरिचित युवकको भीतर जगह कैसे दी जाय? चम्पा यह सब सोच ही रही थी कि इतनेमें लखिया आ गई।

"तो फिर क्या करोगी?"—सब देख-सुनकर वह बोली—"भगवानका जीउ है, यहाँ डाले रखना तो ठीक नहीं! दुख पायगा। बाहर पौरीमें बिछौना कर दो। बेचारा न-जाने किसका लाल है!"

यही ठीक जँचा। बिछौना करके दोनोंने बनवारीको उठाकर पौरीमें सुला दिया।

सारी रात बैठी-बैठी चम्पा माथेपर पनपट्टी देती रही और पंखेसे हवा करती रही। जब वह मारे नींदके झोका लेते-लेते सो गई, तब सवेरा हो चुका था।

उस दिन वह मुरमुरे नहीं भूज सकी।

३

उस दिन भी बुखार ज्यों-का-त्यों बना रहा। चम्पाको पहले-पहल जरा अनख लगा, पर दोपहरको बुखारके जोशमें बनवारीने उसका हाथ थामकर जब यह कहा कि 'तुमने बहुत किया मेरे लिए, पर मैं शायद बचूंगा नहीं,' तो अचानक चम्पाकी आँखें डबडबा आईं। क्षण-भरमें अपने सारे परिश्रम और अड़चनोंको भूलकर उसने कहा—"घबराते क्यों हो? आराम हो जायगा। तुम सोओ, मैं वैद्यजीको बुलाये लाती हूँ।"

करीब तीन बजे सुखनन्दन वैद्य आकर दवा और पथ्य बता गये।

पाँच दिन तक अपना रोजगार बंद करके चम्पाने अथक परिश्रमके साथ बनवारीकी सेवा-टहल की।

वैद्यजी जिस दिन कह गये कि अब कोई डर नहीं, तब उसकी आँखोंमें मारे खुशीके आँसू आ गये। बनवारीने अपने हाथमें उसका हाथ लेकर कहा—"रोती क्यों हो? मुझे तो आराम हो गया।"

चम्पा हाथ छुड़ाकर पथ्य लाने चली गई।

अन्नका पथ्य मिलनेके बाद बनवारीने कहा—"तुमने जो कुछ मेरे लिए किया है, मैं कभी उससे उरिन नहीं हो सकता। अगर भगवान कभी वह दिन दिखलावें—"

चम्पाने कहा—"ये सब बातें अभी रहने दो, हफ्ते-भरसे

दुकान बन्द है, आज जाकर खोलनी है। तुम बाहर न जाना, घर ही में रहना। और यह रही दवा।"--पुड़िया उसके हाथमें देकर बोली--"इसे दोपहरको तुलसी-दलके रसके साथ खाना। मैं नहाकर तुलसी-दल दिये जाती हूँ, अच्छा!"

बनवारी दिन-भर पड़ा-पड़ा न-जाने क्या-क्या सोचता रहा। इस गरीब स्त्रीकी कमाईको वह पड़ा-पड़ा खा रहा है। यह क्या अच्छी बात है?

शामको चम्पाने आकर पूछा--'बुखार तो नहीं आया?"

बनवारीने कहा--"नहीं तो।" फिर बोला--"मैं जाना चाहता हूँ।"

चम्पाके चेहरेपर गम्भीरता आ गई। अँधेरेमें बनवारी उसे देख न सका। कुछ देर सन्नाटा रहा। फिर चम्पा बोली--"अच्छी बात है, चले जाओ। मुझसे क्यों पूछते हो?"

बात असलमें अनुमति-सी नहीं मालूम हुई। बनवारी चुप रह गया।

पहर रात बीते, जब दूध-साबूदाना लेकर चम्पा आई, तब भी उसके चेहरेकी वह काली छाया मिटी नहीं थी।

बनवारीने एक साँसमें कटोरा खाली करके कहा--"देखो, तुम गरीब हो। कितने दिनों तक मुझे पालोगी? इसलिए मैं जाना चाहता हूँ। अब तो अच्छा हो गया हूँ, शायद जा सकूँगा।"

चम्पाने एक बार बनवारीके मुँहकी ओर देखा। अब उसे जाना ही चाहिए, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु इस असहाय अतिथिके लिए चम्पाके हृदयके एक कोनेमें थोड़ी-सी ममता

संचित हो चुकी थी ; 'चले जाओ' कहनेको जबान न उठती थी। बहुत सोच-विचारकर वह बोली—"रोटी खाने लगो, तब चले जाना।"

"अच्छा।"—कहकर बनवारी खाटपर पड़ रहा।

४

उस दिन बनवारी जिद् पकड़ गया, आज शामको वह भात खायेगा। 'ना' कहनेसे कहीं बुरा न मान जाय, इस डरसे चम्पाने कह दिया—"अच्छा।" पर उसके चेहरेका रुख बदल गया ; तमाम दिन फिर वह बनवारीसे बोली-बतराई नहीं। बनवारी इसे ताड़ गया। कुछ दिनसे लगातार नारीके संसर्गमें रहकर रमणीके चित्त-विश्लेषणका उसे कुछ ज्ञान हो गया था।

शामको चूल्हा सुलगाकर चम्पा अदहन चढ़ा रही थी कि इतनेमें एक वैष्णव भिक्षु आँगनमें आ पहुंचा और अत्यन्त करुण स्वरसे बोला—"दो मुट्ठी चावल दो मा, आज एकादशी है!" आज एकादशी है, सुनते ही चम्पाको छातीपरसे बोझ-सा उतर गया, बनवारीको ओर मुँड़कर बोली—"आज एका'स्सी है, मैं तो भूल ही गई थी!"

बनवारी दिन-भरसे चम्पाकी भाव-भंगी देख रहा था। उसके कहनेका अर्थ वह सहज हो समझ गया, बोला—"तो, रहने दो, आज भात न खाऊंगा। कल देखी जायगी।"

चम्पाका चेहरा खिल उठा, बोली—"फुलके बनाये देती हूँ, दूधसे खा लेना, ठीक है न?"

बनवारीने बिलकुल भोले-भाले लड़केकी तरह उत्तर दिया—"हाँ, सोई खा लूँगा।"

वैष्णव भिक्षु उस दिन चम्पाके घरसे तीन दिनका सीधा ले गया।

दूसरे दिन फिर बनवारीने शामको भात खानेकी जिद नहीं की ; सिर्फ बाजार जाते समय चम्पाको एक दस्ता रंगीन कागज ले आनेके लिए कह दिया। रातको कागजका दस्ता हाथमें लिये हुए चम्पाने आकर पूछा—"आज क्या भात खाओगे ?"

इस प्रश्नका उत्तर बनवारीने बहुत पहलेसे ही सोच रखा था, बोला—"नहीं। ये तीन-चार दिन और कट जाने दो, पूनोंके बाद खाऊँगा।"

चम्पाको बड़ी खुशी हुई।

सवेरे उठकर चम्पाने देखा कि उसके घरके सामने बरंडेमें रंगीन कागजके बने हुए आठ-दस पिंजड़े रखे हैं और उनके भीतर रंग-बिरंगी कागजकी चिड़ियाँ बैठी हैं। पिंजड़े और चिड़ियाँ बनानेकी तरकीब देखकर चम्पाको बड़ा आश्चर्य हुआ। जरा दिन चढ़नेपर आँखें मीड़ता हुआ जब बनवारी बाहर निकला, तो चम्पा उससे बोली—"कल रात-भर यही करते रहे हो, क्यों ? और आ गया कहीं फिरसे बुखार, तो कौन देखेगा, बताओ तो सही ?"

बनवारीने उसकी बातका कोई जवाब न देकर कहा—"तुम तो बाजार जाओगी, इन्हें लेती जाना।"

चम्पाने कहा—"क्या होगा इनका ?"

बनवारीने कहा—"बेचना ! चार-छै आने जो मिलें, सो ही सही। फालतू बैठे रहनेसे तो अच्छा है।"

चम्पाने कहा—"इसीसे तुमने सारी रात जगकर यह कौतुक किया होगा, पर बीमार पड़ जानेपर भुगतेगा कौन ? और इन्हें ढोयेगा कौन ? अकेली मैं मुरमुरे बेचूँगी या तुम्हारे इन खिलौनोंको रखाऊँगी ?"

बनवारी चुप रहा।

दोपहर बाद, चम्पाने देखा कि पिंजड़ोंको सुतलीसे बाँधकर बनवारी कहीं जा रहा है। सवेरेकी बात उसे याद आ गई। वह जल्दीसे उठकर बनवारीके सामने जाकर खड़ी हो गई, बोली—"तुम नहीं जा सकते। दो दिन हुए, अन्न पहुंचा है पेटमें, और आज चल दिये आँधी-मेहमें बजारको ! ऐसा आदमी ही नहीं देखा मैंने। दो, दो तो मेरे हाथमें।"

बनवारीने चुपकेसे सुतली थमा दी, बोला—"हुसियारीसे ले जाना। जोरकी हवा लगनेसे फट जायँगे।"

चम्पाने मुरमुरेकी डलिया सिरपर लादी और पिंजरोंको हाथमें लटकाये लिये चली गई।

शामको बाजारसे लौटनेपर चम्पाने हँसते हुए कहा—"ये लो जी, अपने पिंजरोंके दाम ! दो रुपया छै आना।"

बनवारीने हाथ हटाते हुए कहा—"रक्खो अपने पास।"

चम्पाने कहा—"तुम्हारी चीज तुम—"

बनवारीने बीच ही में रोक दिया और बिलकुल निःसंकोच

होकर उसके आँचलमें पैसे बाँधते हुए कहा—"तुम अगर मुझे बचाती नहीं, तो उन पिंजरोंको बनाता कौन, चम्पा ?"

चम्पाने एक बार भर-निगाह बनवारीकी ओर देखा ; और फिर रसोई बनाने चली गई।

दूसरे दिनसे बनवारी खूब उत्साहसे कागजके फूल-पत्ते और चिड़ियाँ आदि बनाने लगा। चम्पा भी फुरसतके वक्त उसके काममें सहायक बन जाती। इस तरह कुछ दिन बीत गये।

एक दिन बनवारीने कहा—"अच्छा, एक दूकान भाड़ेपर ले ली जाय तो कैसा रहे ? उसमें एक तरफ मुरमुरे और चना-चबेना भी बने रहेंगे, और एक तरफ फूल-पत्ते, चिड़ियाँ भी बिका करेंगी। दिनमें वहीं बैठकर काम भी किया करेंगे।"

चम्पाने उत्साहित होकर कहा—"तब तो बड़ा अच्छा हो। तुम्हें बेचना आता है कि नहीं ? बहुतसे ऐसे आते हैं जो ठग ले जाते हैं।"

बनवारीने कहा—"तुम सिर्फ दाम बता देना और बाँट-तराजू ठीक कर देना, बस, और सब मैं कर लिया करूँगा।"

इसके बाद दूकानमें क्या क्या रखना चाहिए, इसी बारेमें बहुत रात तक दोनोंमें बातचीत होती रही। पड़ोसिन मुन्नोकी-सी दूकान करनेकी चम्पाकी बहुत दिनोंसे इच्छा थी, पर अकेलीसे चलना मुश्किल है, इसलिए वह उसे कार्यरूपमें परिणत नहीं कर सकी थी। बहुत दिनोंकी आकांक्षा जब पूर्ण होती दिखाई दी, तो चम्पा अत्यन्त उत्साहित हो उठी। उत्साहकी उत्तेजनामें रात-भर उसे नींद नहीं आई। सोचते-सोचते उसने यहाँ

तक तय कर लिया कि दो-ही-एक सालमें उसकी दूकान नत्थी बिसातीकी-सी हो जायगी।

चम्पाने एक दूकान किरायेपर ले ली। साढ़े-पाँच रुपया महीना किराया सुनकर पहले तो वह हिम्मत हार गई थी। बनवारीने आश्वासन देकर कहा—"साढ़े-पाँच तो एक दिनकी कमाई है चम्पा! दशहरेके दिन एक ही रोजमें कागजके हाथी और नाव बेचकर साल-भरका किराया निकाल लूँगा।"

चम्पाने हास्यमय स्निग्ध दृष्टिसे बनवारीको पुरस्कृत किया।

रंग-बिरंगे कागजके फूलोंसे दो ही दिनमें बनवारीने दूकान ऐसी सजा दी कि देखनेके काबिल। दूकान सज चुकनेके बाद चम्पाके साथ उसकी दो-एक साथिन शामको दूकान देखने आईं। कैसी बढ़िया सजी है! दूकान-भरमें जैसे हजारों रंगीन तितलियाँ कहींसे उड़कर आ बैठी हों। कारीगरकी प्रशंसा करके मुन्नोने चम्पाके कानमें कहा—"बड़ी भाग्यवान है तू, चम्पा। देखना, कहीं तेरी लापरवाहीसे बिछोह न हो जाय!"

मारे शर्मके चम्पाका चेहरा सुर्ख पड़ गया।

उस दिन हाटसे लौटनेमें उसे रात हो गई। आते वक्त रास्तेमें वह पंडितजीसे दुकान खोलनेका महूरत तक सुधवा लाई थी। खाली डलियामें वह दो-ढाई सेर पुराने अखबारोंकी रद्दी भी लेती आई थी।

बनवारीने पूछा—"इन कागजोंका क्या होगा, चम्पा?"

"ठोंगे जो बनाने होंगे"—चम्पाने कहा—"सभी-कोई धोतीके छोरमें थोड़े ही लेंगे!"

हाथ बढ़ाकर बनवारीने कहा—"दो, मुझे दो, आज रात ही मैं बना लूँगा।"

"दिन-भर तो मेहनत की है, और अब रातको फिर जागना चाहते हो? बड़े शौकीन हो न?"—कहकर चम्पा जल्दीसे अपनी कोठरीमें घुस गई।

भोजनके बाद चम्पा अपनी कोठरीमें ठोंगोंके लिए कागज काटने बैठ गई। कल दूकानकी और चीजें इकट्ठी करनी होंगी। चम्पाके हाथ कागज काटनेमें लगे हुए थे, और मन मुरमुरेकी दूकानसे लेकर नत्थी बिसातीकी दूकान तक दौड़ लगा रहा था। उसे बिलकुल स्पष्ट दिखाई देने लगा कि बनवारी खूब मोटा-ताजा हो गया है और लाल खारुयेके मोटे खातेपर बड़ी-बड़ी रकमें लिख रहा है। दूकानके सामने सड़कके किनारे बहुतसे गाहक खड़े-खड़े सौदा ले रहे हैं, और चम्पा दुकानके पीछे कुंजलतासे घिरे हुए छोटेसे मकानके आँगनमें बैठी हुई सोनेके सूतमें पिरोई हुई तुलसीकी माला जप रही है। और भी न-जाने कितने तरहके सुख-स्वप्न शरद्के मेघोंके समान उसके मनके ऊपरसे बहे चले जा रहे थे, जिनकी गिनती नहीं। यकायक चम्पा चौंक उठी। बनवारीकी तसवीर! अखबारमें बनवारीकी तसवीर कैसे छपी? झटपट दीआके पास ले जाकर चम्पाने तसवीरके नीचेकी लाइनोंपर अपनी निगाह दौड़ाई; पलक मारते ही न-जाने कहाँसे एक अन्धकारकी बाढ़-सी आई और उसकी दूकान, मकान, घर-द्वार सब बहा ले गई! बची सिर्फ बनवारीकी तसवीर, अक्षरोंकी कई पंक्तियाँ और चम्पा खुद। दूसरे ही क्षणमें दोनों हाथोंसे

छाती थामकर उसने एक गहरी उसास ली; और मुँहसे निकल पड़ी—"हाय!"

अखबारमें विज्ञापनोंके कालममें बनवारीकी तसवीर थी, उसके नीचे लिखा था—"मेरा भाई चिरंजीव बनवारीलाल श्रीवास्तव आज छै-महीनेसे लापता है। माने उसके लिए अन्न-जल छोड़ दिया है, उनके बचनेकी कोई उम्मेद नहीं। चिरंजीव बनवारी जरा-सी बातपर गुस्सा होकर घरसे निकल गया है, आज तक लौटा नहीं। रंग गेंहुआ, कद मझोला, बदनपर डोरियाकी कमीज है। जो सज्जन उसका पता लगा देंगे, उन्हें पाँच सौ रुपया पुरस्कार दिया जायगा। —कन्हैयालाल श्रीवास्तव"

रात खतम होनेमें घड़ी-आध-घड़ीकी देर है, चम्पा अभी तक सामने कागजोंका ढेर लगाकर स्वप्नाविष्टकी तरह बैठी ही है। सहसा कौओंका बोल सुनकर वह चौंक पड़ी। देखा तो सवेरा हो गया है! बहुत देर तक बैठी-बैठी न-जाने क्या सोचती रही, उसके बाद उठकर चल दी गोविन्दपुरा। वहाँ उसका ममेरा भाई चन्दू डाकखानेमें डाकियेका काम करता है।

बनवारी हाथ-मुँह धोकर बरामदेमें चटाई बिछाकर बैठा ही चाहता था, इतनेमें चम्पा आ गई। तब काफी अबेर हो चुकी थी। बनवारीने उसके मुँहकी ओर देखकर कहा—"क्या हो गया चम्पा तुम्हें, इतनी उदास क्यों हो?"

चम्पाने दाँतों तले ओठ दबाकर कहा—"कुछ नहीं।" फिर मुरमुरे भूननेके बहाने वह बाहर चली गई; आई शामको, दीआ-बत्ती जले बाद।

आजका दिन बनवारीसे काटे न कटा, दिन-भर बड़ा उद्वेगमें रहा। शामको वह रास्तेमें खड़ा-खड़ा चम्पाकी बाट जोह रहा था। चम्पाको आते देख उसके जीमें जी आया, बोला—"आज दिन-भर तुम दीखीं नहीं, सो दिन-भर मैं चक्कर लगाता रहा हूँ।"—

सुनकर चम्पाकी आँखोंमें आँसू भर आये। अपनेको किसी तरह सम्हालकर उसने उत्तर दिया—"आज गोविन्दपुरा गई थी, मुरमुरेके लिए चावल देखने।"

बनवारीने कहा—"तो दिन-भरसे कुछ खाया भी न होगा। मुँह-हाथ धोकर कुछ खा-पी लो पहले। दाल-रोटी ढकी रखी है। मैं एक दफे दुकान देख आऊँ।"

बनवारी चला गया।

बरामदेमें आँचल बिछाकर लेट रही चम्पा। घण्टे-भर बाद तुलसीजीपर दीआ रखा; और फिर रोटी लेकर खाने बैठी।

बनवारी ही उसके लिए रोटी बनाकर रख गया है, विधाताका कैसा परिहास है। पहला ही कौर उठाकर ज्यों ही उसने मुँहकी ओर बढ़ाया, त्यों ही वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसी वक्त थाली ढककर वह उठ गई।

उस दिन चम्पासे कुछ खाया न गया।

आज कई दिनसे चम्पा इतनी उदास, इतनी गम्भीर क्यों है, बनवारी कुछ समझ न सका। चौथे दिन खानेके बाद उसने पूछा—"आज तो दूकानका महूरत था न! चलो, मुझे समझा-समझू दो।"

चम्पा एक बात कहना चाहती थी, पर रुक गई। कुछ देर चुप रहकर बोली—"आज रहने दो।"

"क्यों? दशहरा नजदीक है, अभीसे सब सम्हाला न जायगा, तो फिर कैसे होगा? गाहकोंको मालूम तो होना चाहिए कि यहाँ दूकान है।"

चम्पा तुलसी-तले गोबर लीप रही थी। हताश स्वरसे मुलामियतके साथ बोली—"उँह, अब दूकानका क्या करना है!"

बनवारीको साफ सुनाई न दिया, उसने फिरसे अपनी बातको दुहराया। चम्पा खड़ी हो गई, बोली—"दुकानकी तो भगवान ही जानते हैं, तुम अब मुझसे कुछ मत पूछो।"

यद्यपि बनवारी इस बातका कुछ भी अर्थ न समझ सका, किन्तु फिर भी वह अपने दूसरे प्रश्नको भीतर-ही-भीतर पीकर रह गया।

शामको चम्पा अपनी कोठरीके सामने बरामदेमें बैठी हुई कथड़ी सीं रही थी; और बनवारी बाहर चबूतरेपर पैर लटकाये बैठा-बैठा शीघ्र ही दुकान खोलनेके विषयमें तरह-तरहकी युक्तियाँ दिखा-दिखाकर अनर्गल बक रहा था। इतनेमें बाहरके दरवाजेके पास आकर किसीने पुकारा—"चम्पाबाई घरमें हैं?"

चम्पाके उत्तर देनेके पहले ही एक अधेड़-उमरका आदमी एक वृद्धा स्त्रीके साथ आँगनमें घुस आया। यकायक भाई और माको देखकर बनवारी एकदम सिटपिटा गया। वृद्धा मा बनवारीको छातीसे लगाकर फूट-फूटकर रोने लगीं। चम्पा मुँहसे कुछ न कहकर बरामदेमें चटाई बिछाकर चली गई।

बाहर मझोली तैयार खड़ी थी। रसोई बनानेके बहानेसे बटलोईमें अदहन चढ़ाकर चम्पा रसोईमें बैठी हुई थी। आँधीकी तरह रसोईमें घुसकर बनवारीने कहा—"खैर, मैं तो जाता हूँ, पर तुमने मुझसे इतनी चालाकी क्यों चली? मुझे कह देतीं कि तुम चले जाओ, तो मैं खुद ही चला जाता!"

बनवारीको देखते ही चम्पाने उठकर पैर छुए, प्रणाम किया, फिर हटकर अलग खड़ी हो गई। बनवारीके आरोपकी सफाईमें एक भी हरूफ मुँहसे न निकाला। सिर्फ एक बार उसके मुखड़ेकी ओर देखा भर। बनवारीने उस सजल व्यथातुर दृष्टिका अर्थ ही न समझा। श्लेषके स्वरमें बोला—"पाँच सौ रुपयेके लोभके मारे, क्यों?"

भाईने उसके लिए पाँच सौ रुपयेके पुरस्कारकी घोषणा की थी, उसे यह बात मालूम थी।

बनवारीकी बात सुनकर चम्पाकी आँखोंसे चिनगारियाँ-सी छूटने लगीं। क्या न-जाने कहना चाहती थी वह। इतनेमें "चम्पा, रानी बिटिया मेरी, कहाँ है?"—कहती हुई बनवारीकी मा वहाँ आ पहुंचीं। चम्पाको छातीसे लगाकर उन्होंने कहा—"मैं जाती हूँ, बेटी, तुमने इस बुढ़ियाका खोया धन लौटा दिया है। भगवान करे, तुम्हें अक्षय बैकुंठ मिले। और क्या कहूँ, बिटिया, बुढ़ियाको तुमने बचा लिया, रानी बेटी मेरी। जितने दिन जीऊँगी, रोज तुम्हारे नामसे नारायणको तुलसीदल चढ़ाऊँगी, बेटी! ये लो, घर-गिरस्तीमें जरूरत तो पड़ती ही रहती है, इसे रख लो।" कहते हुए बुढ़ियाने अनेकानेक आशीर्वादोंके

साथ चम्पाके हाथमें छोटी-सी एक पोटली जबरदस्ती दे दी।

इसके बाद वे तीनों मझोलीपर सवार हुए। गाड़ी चल दी। चम्पा उस चलती हुई मझोलीकी ओर बहुत देर तक एकटक देखती रही।

इतनेमें पड़ोसिन मुन्नीके लड़के मोती और मानिकने आकर पुकारा—"चम्पा जीजी!" चम्पाके घर कौन आया है, यह जाननेके लिए मुन्नीने इन दोनोंको भेजा था। मानिकको देखकर चम्पाको होश आया। एक गहरी उसास लेकर उसने कहा—"हे प्रभु, तुम्हीं हो!" उसके बाद रसोईघरमें जब भीतरसे दरवाजा बंद करने लगी, तब हाथकी पोटलीकी तरफ उसका ध्यान गया। खोलकर देखा, तो उसमें सौ-सौके पाँच नोट! पुरस्कार! रहस्यपूर्ण हास्यसे चम्पाके ओठ सिकुड़ गये। मानिकसे उसने कहा—"जरा तू यहीं खड़ा रहना मानिक, देख आऊं, गाड़ी कहाँ तक गई है!"

गाड़ी ठाकुरोंके बाग तक पहुंची होगी। इतनेमें पीछेसे कोई हाँफता हुआ दौड़ा आया और बोला—"जरा गाड़ी खड़ी करो।"

कन्हैयालालने पीछेको मुड़कर कहा—"कौन?"

"मैं हूँ, मानिक। ये लीजिये, चम्पा जीजीने यह पोटली लौटा दी है।"—कहकर उसने पोटली गाड़ीके भीतर फेंक दी और वह पासकी एक पतली गलीसे भाग गया। बनवारीने पूछा—"क्या है इसमें, भइया?"

कन्हाईने कहा—"वे ही पाँच सौके नोट, वापस कर दिये, मालूम होता है!"

बनवारीकी आँखें क्षण-भरके लिए आश्चर्यसे फटकर आँसूसे भर गईं।

चम्पा आज भी सिरपर डलिया रखे मुरमुरे बेचती है। उस दूकानमें उसने ताला लगा रखा है, पर महीने-महीने वह उसका किराया अदा करती रहती है; प्रतिदिन संध्या होते ही दुकानमें वह संध्या-दीप जलाती है। क्यों, सो कोई नहीं जानता।

सुधारक

आजसे—

(क) अनुन्नत जनसाधारणकी सेवा करना मेरे जीवनका एकमात्र लक्ष्य होगा।

(ख) उनकी सामाजिक उन्नति करना मेरे जीवनका मूल मंत्र होगा।

(ग) विधवाओंका दुःख दूर करना मेरे जीवनका व्रत होगा। भगवान मेरे सहाय हों।

दृढ़ताके साथ, गद्गद कंठसे उल्लिखित वाक्योंका उच्चारण करके श्रीयुत अनादिनाथ चतुष्पाठी बी० ए० ने अपने हस्ताक्षर किये; और उसके नीचे लिख दिया पिता स्वर्गीय पं० श्यामाचरण चतुष्पाठी, मु० पद्मपुर, जिला राजगंज।

लम्बी नाककी मोटी नोंकपर चश्मा उतारते हुए समाज-सुधारक-समितिके प्रवीण मंत्री महोदयने कहा—"जो व्रत आज तुमने लिया है, उस व्रतका यदि तुम उद्यापन कर सके, तभी जीवन सार्थक होगा।—कब जा रहे हो तुम ?"

"आज ही। अब देरी न करूँगा। समाजकी दुर्दशा देखते हुए धैर्य धारण करना मेरे लिए असम्भव हो गया है।"

"जाओ। तुम्हारा जीवन दूसरोंके लिए आदर्श हो।"—कहते हुए मंत्री महोदयने उपस्थित अन्य पाँच युवकोंकी ओर देखा। अनादि नमस्कार करके बाहर निकल गया।

उन दिनों समाज-सुधारके लिए शहरमें दनादन सभा-समितियाँ कायम हो रही थीं। उन्हींमेंसे एक सभाके मंत्री और प्रचारकका पद अनादिनाथने ग्रहण किया। कल शामको, श्रद्धानन्द-पार्कमें, मंत्री महोदयका भाषण सुनकर उसके हृदयमें समाज-सेवाके लिए जो उत्कट आग्रह पैदा हुआ था, आज उसकी परिणति इस रूपमें हुई।

'डेरे' पर आकर अनादिने अपने साथियोंसे कहा—"आज मुझे अपने जीवनका स्वप्न सफल करनेका मौका मिला है, आजसे कार्यक्षेत्रमें पदार्पण करता हूं। कर्मपथपर जा रहा हूँ, तुम सब पीछे-पीछे चले आओ।"—कहते हुए अनादिने आज शामकी सारी घटना कह सुनाई। सबोंने एकस्वरसे कहा—"हाँ, यह है काम! तुम जाओ।" दो एकने वचन भी दिया कि 'लॉ'की परीक्षा खतम होते ही वे भी उसका साथ देंगे।

अनादिने नौकर रामचरणको बुलाया ; और बारह कप चाय लानेको आदेश दिया। रामचरण सीढ़ी उतर रहा था कि अनादिने फिर उसे बुलाकर आगाह कर दिया—"चौराहेकी दूकानसे लाना, राम !"

रामचरण बोला—"बाबूजी, वह तो झुम्मक धोबीकी दूकान है।"

अनादिने भावुकता-पूर्ण दृढ़तासे कहा—"दुनियामें कोई धोबी नाई नहीं, राम, सब एक हैं! सब एक ही जमीन-आसमानके—"

रामने पूरी बात नहीं सुनी ; 'अच्छा' कहकर चल दिया, और नीचे उतरकर अपने ही आप कहने लगा—'रातको तो बाबूजीने मुझे नहलवाया था।'

जब तक चाय आई, तब तक वहाँ ग्यारहकी जगह सिर्फ तीन ही सज्जन रह गये! बाकी आठ चाय आते-आते ही खसक गये। लिहाजा झुम्मक धोबी उर्फ झम्मनलालकी दूकानकी चाय, चार कपके सिवा, बाकी सब मोरीमें लुढ़का दी गई ; भावुकतामें मग्न अनादिने उस तरफ ध्यान ही न दिया।

[२

रेलसे उतरकर करीब तीन बजे अनादि बैग हाथमें लिये हुए चन्दनपुरके घाटपर पहुंचा। सारी रात नावपर ही बितानी पड़ेगी, यह सोचकर उसने एक अच्छी-सी नाव किरायेपर ले की।

नाव जब घाटपर आकर लगी, तब लगभग शाम हो चुकी थी। मल्लाह हीरामनने बाबूसे पूछा—"बाबूजी, रातको फलाहार करेंगे, या दाल-भात ?"

अनादिने बिस्तरपर लेटे हुए ही कहा—"दाल-भात हो ठीक रहेगा।"

"तो दीजिये चार-आने पैसे। बजार हो आऊँ जरा।"

पैसे लेकर हीरामन बाजार चल दिया।

हीरामनके जाते ही सुखई मल्लाहको तम्बाकूकी सूझी। बाबूसे पूछने लगा—"बाबूजी, आप तमाकू पीते हैं ?"

अनादिने कहा—"सिगरेट पीता हूँ मैं। मेरे पास मौजूद है।"

सुखईने हाथ पसारकर कहा—"बाबूजी, एक सिगरेट मिल जाती तो—"

अनादिने चटसे एक सिगरेट निकालकर उसके सामने फेंक दी। सिगरेट सुलगाकर, एक दम लगाकर, सुखई खाँसता हुआ बोला—"रेतीपर चूल्हा बना दूँ बाबूजी ?"

अनादिने कहा—"रेतीपर, क्यों ? तुम लोगोंके चूल्हा नहीं है ?"

सुखईने कहा—"जी हाँ, है तो;—मगर हम लोग तो मल्लाह हैं ?"

जात-पाँतके बारेमें अपने विचार प्रकट करनेका ऐसा बढ़िया मौका आनादिसे छोड़ा न गया, बोला—"मल्लाह हो इससे क्या हुआ ? जातमें कोई छोटा नहीं है भाई। तुम लोग खुद अपनेको छोटा समझते हो, इसीलिए तुम छोटे हो। तुमलोगोंका

यह भ्रम दूर करनेके लिए ही मैं आया हूँ। मैं खुद ब्राह्मण हूँ, तुम्हारी हो हँड़ियाका भात खाकर मैं दिखा दूँगा कि मल्लाहके हाथका खानेसे ब्राह्मणकी जात नहीं जाती।"

बातें सुनकर सुखई दंग रह गया। उसकी बोलती बन्द हो गई। बात सुखईके हृदय तक पहुंच गई, यह जानकर अनादिने कुछ देर तक नीरव रहकर उसे सोचनेका मौका दिया।

कुछ देर बाद हीरामन भी आ पहुंचा। आते ही उसने कहा—"तसला ले आ।"

सुखईने पूछा—"क्यों ?"

हीरामनने कहा—"रातको कौन झंझट पाले ? ला तसला, चिउड़ा ले आया हूँ सेर-भर। पानीमें भिगोकर रख दूँगा।"

सुखईने झांककर देखा कि बाबूजी आँखें मीचे सो रहे हैं। उसने धीरेसे कहा—"नाव मत छूना, तसला लाये देता हूं, अलगसे लेकर रेतीपर रख दे।"

हीरामन अचंभेमें पड़ गया, बोला—"क्यों, क्या हुआ ?"

सुखईने हीरामनकी ओर गरदन बढ़ाकर चुपकेसे कहा—"बाबू क्रिस्तान हैं !"

हीरामनने आँखें फाड़कर कहा—"कैसे मालूम हुआ तुझे ? जनेऊ जो पहने हुए हैं ?"

"अरे, ये तो सब दिखानेके लिए है। बाबू तो हमारे चूल्हेपर भात बनाकर खाना चाहते हैं !"

इस बातसे हीरामनका रहा-ठहा सन्देह भी दूर हो गया। उसने कहा—"ला, अलगसे मेरे हाथपर छोड़ दे।"

सुखईने तसला देकर अनादिको जगाया।

अनादिको मीठी नींद आ रही थी, बोला—"चूल्हा सुलगा लिया ?"

हीरामन बड़े असमंजसमें पड़ गया। क्रिस्तान छूता है तो चूल्हेकी जात जाती है, और ब्राह्मण होकर मल्लाहके चूल्हेपर रसोई बनाता है तो महापातक लगता है! जरा सोच-विचारकर हीरामनने कहा—"बाबूजी, चूल्हा काम-लायक नहीं है, हमलोग तो, बाबूजी, रातके लिए चिउड़ा ले आये हैं।"

बनाकर खाना तो अनादिकी जनमपत्रीमें ही नहीं लिखा था। चिउड़ेका नाम सुनते ही वह बोला—"तो फिर मेरे लिए भी चिउड़े ले आओ। रातको बनाने-अनानेका झंझट कौन करे।"

इस तरह, चूल्हेकी जात बचाकर हीरामन बाबूजीके लिए चिउड़ा लाने चल दिया।

२

दूसरे दिन करीब दस-ग्यारह बजे नाव पदमपुर पहुंची। बिलकुल बचपनमें गाँव छोड़ा था, और उसके बाद बीस वर्ष शहरमें बिताये ; लिहाजा गाँवमें अनादिका परिचित कोई न था।

बहुत सोच-विचारकर, तलाश करनेके बाद, वह अपने ही मकानमें जाकर ठहरा। राह-चलते लोग कुतूहल-दृष्टिसे उसे देखने लगे। कानाफूसी भी करने लगे ; पर किसीने उससे कोई बात पूछी-गछी नहीं। उसका सारा शरीर मोटे कम्बलसे ढका हुआ था, और इसी भेपसे गाँवके लोग डरते थे। वजह यह थी कि थोड़े दिन हुए, प्रेसिडेन्ट-पंचायत साहबने इस्तहार जारी करके

सबको इत्तला दे दी थी कि गान्धीके चेलोंसे किसी तरहकी बातचीत करने या मिलने-जुलनेकी सरकार बहादुरने मनाई कर दी है। गान्धीके चेलोंके लक्षण भी इस्तहारके नीचे लिख दिये गये थे—

(क) वे सिरपर सफेद किश्तीदार टोपी लगाया करते हैं।

(ख) मोटे कपड़े पहनते हैं; मोटे कपड़ेका कुड़ता या कम्बल ओढ़े रहते हैं।

(ग) हिन्दू चेले 'बन्दे मातरम्' और मुसलमान 'अल्ला हो अकबर' के नारे लगाते हैं।

(घ) गान्धीके चेले सभा इकट्ठी करके लेक्चर देते हैं; और सबसे चार-चार आने पैसा वसूल करते हैं।

और सब लक्षण न होनेपर भी, एक लक्षण तो उसमें नीचेसे ऊपर तक साफ दिखाई देता था। इसके अलावा, इससे पहले जितने भी गान्धीके चेले गाँवमें चन्दा उगाने आये हैं, उन सबकी चाल भी हूबहू ऐसी ही थी। खैर, कुछ भी हो, किसी तरह पता लगाते-लगाते अनादिनाथ अपने टूटे-फूटे घर तक पहुंच गया। आँगनमें कमर तक घास खड़ी थी, दीवारें टूट-फूटकर इधर-उधर गिर पड़ी थीं। टूटी दीवारोंकी ईंटें पड़ोसियोंके काममें आ चुकी थीं। रसोई-घरकी छत चलनीको भी मात कर रही थी। यह सब देख-भालकर अनादिने अपने कुनबेके एक भाईको उसकी मरम्मतके लिए तैनात कर दिया। कुछ दिन गाँवमें रहकर मकानका जीर्ण-संस्कार कर जानेका संकल्प करके उसने जंग-लगे तालेको किसी तरह खोलकर

दक्षिणकी कोठरीमें प्रवेश किया। उसके बाद कोठरीमेंसे जैसे तैसे एक चौकी निकाली ; और बाहर बिछाकर उसपर आध घंटा कम्प्लीट रेस्ट लिया। जब थकान कुछ हलकी हुई, तो मुंह-हाथ धोनेके लिए कुएपर पहुंचा। लोटा फाँसा ही था कि किसीने पीछेसे आकर पूछा—"भाई साहबका कहाँसे आना हुआ ?"

अनादिने पीछेकी ओर मुड़कर प्रश्नकर्ताको ऊपरसे नीचे तक देखा, फिर बोला—"कलकत्तेसे।"

"नाम ?"

"अनादिनाथ चतुष्पाठी, स्वर्गीय पंडित श्यामाचरणजीका पुत्र हूँ मैं।"

प्रश्नकर्ताने चबाई हुई दँतौनको फेंकते हुए कहा—"अच्छा, अच्छा, तुम श्यामू-भइयाके लड़के हो ? बहुत दिन बाद देश आये हो ! अच्छी बात है, अच्छी बात है। अभी तो कुछ दिन यहाँ रहोगे ?"

आगन्तुकको अनादि पहचानता न था। कोई अपने ही घरानेके होंगे, यह सोचकर उसने बड़े अदबके साथ कहा—"जी हाँ। अभी तो कुछ दिन यहीं रहनेका इरादा है।"

"अच्छी बात है, हम लोग हैं ही। कोई फिकर नहीं। पर अब न वे राम ही रहे, और न वह अयोध्या। गाँवके जो कुछ बचे खुचे मुखिया थे, वे सब एक-एक करके चल बसे। अब रह गये एक हम और नन्दू-चाचा, सो भी किसी कदर चल रहे हैं। सोऽ, हम लोगोंके भी अब दिन पूरे हो चुके समझो, जब तक चलते हैं, तभी तक हैं। तुमने मुझे पहचाना नहीं ? मैं

राधेलाल चौधरी हूँ। बहुत दिनकी बात है, एकबार राजगंज गया था, तब तुम्हारे ही घरपर ठहरा था, तब तुम बहुत छोटे थे।" इतना कहकर राधेलाल चौधरीने अनादिके स्वर्गीय पिताके अतिथि-सत्कारके विषयमें बहुत-सी बातें कह डालीं।

अनादि नहा-धोकर जब कपड़े पहनने लगा, तो वे बोले—"अच्छा तो, शामको घर ही पर रहना, हम आयेंगे। गाँवके हाल-चाल सब बतायेंगे। यहाँ रहना ही है तो जरा सोच-सम्हलकर रहना ही ठीक है।"

"अच्छा।"—कहकर अनादि भीतर चला गया।

४

दोपहरको, खा-पीकर आराम करनेके बाद, अनादिने मजदूर लगाकर घरका आँगन साफ करा डाला। किसानोंमें जा-जाकर इस बातका भी पता लगा लिया कि गांवमें नीच जातोंके घर कितने हैं; और विधवाओंकी संख्या भी जान ली। इसके बाद काम शुरू करनेका नम्बर है। अनादि बैठा-बैठा यही सोच रहा था कि कैसे काम शुरू किया जाय, इतनेमें राधेलाल चौधरी आ पहुंचे, बोले—"वाह वाह! तुमने तो सब एक ही दिनमें ठीक-ठाक कर लिया। शहरके लड़के होते बड़े फुरतीले हैं।"

अनादिने झुककर नमस्कार करते हुए कहा—"जी हाँ, आइये, बैठिये, आखिर कुछ दिन रहना तो है ही, इसीलिए जरा सफाई करवा दी।"

"हाँ हाँ, अपना घर है, रहोगे नहीं तो क्या। कुछ दिन

बिना रहे सब ठीक-ठाक हो कैसे सकता है ! देखो भला, कैसा जुल्म करते हैं लोग। यह जो आमका पेड़ देख रहे हो सामने, वह तुम्हारी हदमें था, अब अपनी हदमें मिलाकर मौजकर रहा है बैजू अहीर। कुछ नहीं, बस एक दरखास्त देनेकी देर है; चुटकियोंमें ढीला पड़ेगा—”

अनादि चुप रहा।

चौधरीजी कहते रहे—“और तालाबके उस पार देखो, उस बगीचेके सभी-कोई मालिक बन गये हैं ; जिसके मनमें आता है वही जामुन तोड़ ले जाता है। उधर भी जरा निगाह रखना।”

अनादिने कहा—“जी हाँ।”

चौधरीजी कहने लगे—“दावा करनेमें कोई दिक्कत नहीं, दो रुपया देकर मैं अपने दामाद सोमनाथसे सब ठीक कर दूंगा—बड़े वकीलका मुहर्रिर ठहरा, उसीके जुम्मे रहेगा सब। और पैरवीकी रही, सो मैं तैयार हूँ।”

अनादि—“अच्छी बात है”—कहकर खामोश हो गया।

इसके बाद चौधरीजीको और भी बहुत-कुछ कहना था, पर इतनेमें गाँवके कई प्रतिष्ठित लोग आ पहुंचे। मामला यहीं तक रह गया। स्व० श्यामाचरण चतुष्पाठी काफी जायदाद छोड़ गये थे ; ‘एफ-ए’ ‘बी-ए’ पास-शुदा उनके अविवाहित पुत्र चिरंजीव अनादिनाथ गाँवमें आये हैं, कोई अभिभावक नहीं ; लिहाजा इस पदके लिए सभी-कोई उम्मीदवार थे। सिर्फ दो युवक दूसरे कामसे आये थे ; अर्थात् गाँवमें जो ‘पदमपुर नेशनल ब्रिटिश ड्रैमेटिक क्लब’ कायम हुई थी, उसके लिए कुछ चन्दा वसूल

करना। अनादिने सबको नमस्कार करके यथायोग्य स्थान देते हुए कहा—"आप लोगोंसे मिलकर बड़ी खुशी हुई। देश छोड़े जमाना बीत गया; परिचय तो किसीसे है नहीं ?"

तब सब अपना-अपना परिचय देने लगे। अनादिको मालूम हो गया कि स्व० श्यामाचरणजीके साथ सभीकी बहुत गहरी मित्रता थी। थोड़ी ही देरमें अनादिने देख लिया कि गाँवमें वह बन्धुहीन नहीं है। समागत सभीसे उसका कुछ-न-कुछ रिश्ता है। मामा, चाचा, ताऊ, भाई, भतीजे, मय बहनोई तक, सभी प्रकारके रिश्तेदारोंका अस्तित्व देखकर उसे बहुत ही खुशी हुई। प्राथमिक परिचय हो जानेके बाद एकने प्रश्न किया—"भाई साहब, गान्धीके चेले तो नहीं हो ?"

प्रश्न करनेका ढंग, प्रश्नकर्त्ताकी उत्सुक दृष्टि और एकसाथ आई हुई आत्मीय-मंडलकी कौतूहली अवस्था देखकर सहसा अनादिको ख्याल आया कि इस मौकेपर सच कहना खतरनाक हो सकता है। क्योंकि हाल ही में वह, प्रचारार्थ गाँवमें गये हुए किसी कांग्रेस-सेवककी छीछालेदरका समाचार अखबारोंमें पढ़ चुका था, इसलिए खूब समझ-सोचकर उसने जवाब दिया—"जी नहीं, मेरा काम और तरहका है। मैं एक महान् उद्देश्य लेकर आप लोगोंकी सेवामें आया हूँ।"

एकसाथ सभी-कोई उस महान् उद्देश्यको जाननेके लिए उत्सुक हो उठे। एक वृद्ध सज्जनने कहा—"वह महान् उद्देश्य कौनसा ?"

अनादिने कहा—"पतित जातियोंका उद्धार। दूर क्यों जाते हैं,

यहीं अपने गाँव ही में देखिये न! जुलाहे, मल्लाह, कुर्मी, कलवार, काछी, धोबी ये सब जातियाँ कैसी बुरी हालतमें हैं! इनका उद्धार करना ही मेरे जीवनका महान् उद्देश्य है। ब्राह्मणोंमें इनका पानी चलाकर यह सिद्ध कर देना है कि आखिर ये भी आदमी हैं!"

अन्तिम वाक्य सुनते ही उपस्थित जनता जरा सजग हो गई, क्योंकि कुछ दिन पहले वे अखबारमें पढ़ चुके थे कि म्लेच्छ-प्रकृतिके कुछ शिक्षित नवयुवक वर्णाश्रम-धर्मका विध्वंस करनेके लिए कमर बाँधकर पिल पड़े हैं और लेक्चर दे-देकर खूब प्रचार करते फिरते हैं। बात बिलकुल सच निकली। लेकिन सामने किसीने कोई प्रतिवाद नहीं किया।

इसके बाद भी अनादि बहुत-कुछ कह गया। दिन छिपनेके पहले ही लोग धीरे-धीरे खिसकने लगे; रह गये सिर्फ थियेटरके पंडे दो-चार नौजवान। उन्होंने अनादिको इस पुण्यकार्यमें भरपूर सहायता पहुंचानेका वादा किया; और उसके एवजमें एक टेबिल-हारमोनियम प्रदान करनेका वचन लेकर वे चलते बने।

दूसरे ही दिनसे अनादिने समाज-सुधारका काम प्रारम्भ कर दिया। सवेरे ही उठकर वह मल्लाहोंके मुहल्लेमें पहुंचा; और मुखियोंको बुलाकर उन्हें अपना महान् उद्देश्य समझा दिया। एफ०ए० बी०ए० पास-शुदा दिग्गज विद्वानकी सभी बातें उन लोगोंने मान लीं। उसके बाद जुलाहोंमें, कुरमी कलवार और काछियोंमें, सर्वत्र प्रचार-कार्य समाप्त करके अन्तमें यह तय किया गया कि सभी श्रेणियोंके अवनत हिन्दुओंकी एक विराट सभा की जाय।

जुलाहों और मल्लाहोंके महल्लेमें दो एक नवयुवक भी थे, जो स्कूलमें थर्ड क्लास तक पढ़कर माता सरस्वतीसे विदा लेकर बेकार घर बैठे थे ; और स्वजातीय पेशा अख्तियार करना उनके लिए कष्टसाध्य और लज्जाजनक था ; साथ ही समाजकी उन्नति करनेके लिए उनके उत्साहकी सीमा नहीं थी। ये लोग बाहर अपने-अपने समाजके मुखपत्रोंको गौरसे पढ़ा करते हैं और इस बातको महसूस करने लगे हैं कि उनके प्रति उच्च-वर्णोंका व्यवहार अत्यन्त अन्यायपूर्ण और विद्वेष-युक्त होता है ; यहाँ तक कि इस बातको वे अपनी पंचायती बैठकोंमें भी बेधड़क कहने लगे हैं। परन्तु इस तरीकेसे वे अपनी जातिमें अब तक जागरण नहीं ला सके हैं। अनादिका अभिप्राय अपने उद्देश्यके अनुकूल जानकर वे उसके अनुयायी बन गये ; और इस विराट सभामें विभिन्न गाँवोंसे अपनी-अपनी जातिके प्रतिनिधि उपस्थित करनेका भार उन लोगोंने अपने ऊपर ले लिया।

सभा होनेको अभी आठ-दस दिनकी देरी थी। इन बीचके दिनोंमें दूसरा कोई काम करनेके विचारसे अनादिने अपने थियेटर-पार्टीके साथियोंको बुलावाया। उन लोगोंसे सलाह-मशविरा करके यह तय किया गया कि आगामी रविवारको 'कीचक-संहार' नामक नाटक खेला जाय। पौराणिक नाटक देखनेके लिए अनेक विधवाओंका समागम होगा, और नाटक शुरू होनेसे पहले अनादि उपस्थित विधवाओंको लक्ष्य करके भाषण देगा। प्रचारका यह तरीका सबको पसन्द आया, और उसकी तैयारियाँ होने लगीं।

५

शामको नाटक शुरू होनेकी बात थी; मगर पेंठ अभी उठी नहीं थी, इसलिए दर्शकोंका समागम होनेमें देर होने लगी। रातके ग्यारह बजे जाकर महिलाओंका स्थान खचाखच भर गया। पुरुषोंका स्थान पहलेसे ही भर चुका था।

रंगमंचकी यवनिकाके अन्तरालमें बाजोंकी झनकार शुरू ही हुई थी कि इतनेमें बड़े जोरसे तालियाँ बज उठीं, जिससे दर्शकमण्डलीमें सनसनी-सी पैदा हो गई। अनादि मंचपर आकर खड़ा हो गया और भाषण देने लगा। इधर श्रोताओंमें कानाफूसी और धीमे स्वरमें समालोचना भी होने लगी। पर अनादिने उस तरफ जरा भी ध्यान नहीं दिया। बीच-बीचमें फकत दो-चार ऊधमी लड़कोंका 'ऑर्डर' 'ऑर्डर' चिल्लाना उसे सुनाई देता था। घंटे-भर बाद, जब व्याख्यान खतम हुआ, तब अनादिने सुना कि मंचके भीतर बड़ा ऊधम मच रहा है। एक सज्जन नाटकके उद्योग-कार्यमें लगे हुए एक युवकके सामने खड़े होकर कह रहे थे—"सबके सब बदमाश लुच्चे-गुण्डोंका दल इकट्ठा हुआ है, भले घरकी बहू-बेटियोंको बुलाकर बेइज्जत करना—"

युवकने प्रत्युत्तरमें उससे भी बढ़कर कड़ी और बेहूदा भाषामें जवाब दिया। धीरे-धीरे अपनी जगह छोड़कर और भी लोग आ पहुंचे। दोनों ही पक्षोंमें गाँवकी ठेठ राष्ट्र-भाषामें उत्तर-प्रत्युत्तर चलने लगा। इतनेमें भाषणकी कापी बगलमें दबाये

हुए अनादिनाथ भी वहाँ आ खड़ा हुआ। उसे देखते ही चारों ओरसे ऐसे कठोर वाक्यवाणोंकी वर्षा होने लगी कि उससे किसी भी धीर मनुष्यका धैर्य डिग सकता था, किन्तु समाज-सुधारक अनादिनाथ टससे मस नहीं हुआ। बल्कि उसे आश्चर्य हुआ कि आखिर बात क्या है! उसने स्वप्नमें भी न सोचा था कि उसके भाषणका ऐसा दुष्परिणाम हो सकता है। धीरे-धीरे इकतरफा गाली-गलौज खतम हो गई, फिर भी अनादिको जवाब देने-लायक कोई शब्द सुझाई नहीं दिये। इतनेमें एक कृष्णकाय बालकने आकर अनादिका हाथ पकड़कर खींचा, और बोला-"बुलाती है तुमको—"

कौन बुलाती है, क्यों बुलाती है, बिना कुछ पूछे-ताछे ही अनादि लड़केके साथ चल दिया। मंचके पिछवाड़ेमें इमलीका एक पेड़ था; वहाँ अनादिकी प्रतीक्षामें खड़ी हुई एक स्त्रीने अनादिको प्रणाम करके कहा—"पालागन पंडितजी, मेरा उद्धार कर दो पंडितजी!"

कैसा उद्धार, किसका उद्धार, उसकी कुछ समझमें नहीं आया। बोला—"मेरी सामर्थ्यके बाहर न हुआ तो जरूर करूँगा।"

स्त्रीने कहा—"आप सब-कुछ कर सकते हैं पंडितजी। मेरी अभागी लड़कीको पार उतार दो। आठ बरसकी उमरसे राँड़ होकर उन्नीसवीं सालमें पड़ी है। अब मुझसे नहीं चलती; अगर कोई ले तो उसे—"

अनादिने सब बात समझ ली। उसका व्याख्यान बिलकुल व्यर्थ नहीं गया, यह जानकर उसे आनन्द भी हुआ।

बोला—"अच्छी बात है। कल किसी वक्त हमारे घरपर आना, सब ठीक हो जायगा। पर एक बात है, यहाँ होना मुश्किल है। जाना-हुआ कोई अच्छा लड़का है, जो विधवासे ब्याह करना चाहता हो ?"

स्त्रीने कहा—"यहाँ ब्याह कौन करेगा, महाराज ! पुरोहितजी कहते हैं कि विधवासे ब्याह तो दो ही कर सकते हैं, या तो मुसलमान या क्रिस्तान। हिन्दुओंमें तो यह महापातक है।"

अनादि व्यंग्यात्मक हँसी हँसकर बोला—"आना तुम, देखूँगा।"

स्त्री प्रणाम करके चली गई।

अनादि घर लौटा। उधर समाज-रक्षकोंका सारा क्रोध जाकर पड़ा अभिनेताओंपर। जो लड़का उत्तरा बननेवाला था, उसे कान पकड़कर ले गये जोशीजी ; अभिमन्यु अपने मामाकी लाल आँखें देखकर पहले ही से रफूचक्कर हो गया था। लिहाज़ा रातके दो बजे थियेटर शुरू होकर तीन बजे खतम हो गया।

६

दूसरे दिन शामको, अनादिनाथके समाज-सुधारकी पहली सफलता पार्वतीको साथ लेकर कलवाली स्त्री आ पहुंची। बातों-बातोंमें अनादिने उसका सारा हाल जान लिया। पार्वतीने बचपनमें विधवा होकर बड़ी मुश्किलसे इतनी उमर काटी है ; अब माकी इच्छा है कि वह गृहस्थी करे। अनादिने सब हाल

सुनकर कहा—"जब मैं जाने लगूँ, तुम अपनी लड़कीको लेकर मेरे साथ चलना। अभी चुपचाप बैठी रहो; यहाँके आदमी ठीक नहीं हैं, मालूम हो जानेपर सब गड़बड़ कर देंगे।"

मा और लड़की दोनों चली गईं।

इस बीचमें, अनादिके चेले उधर भावी विराट सभाके लिए श्रोता एकत्र करनेके काममें जुटे हुए थे; और इधर अनादि संहिता-सागर मन्थन करके श्लोक-उद्धारके काममें व्यस्त था। उन्नीसवें संहिताकारके साथ परिचय समाप्त होनेके पहले ही, सहसा एक दिन सवेरे अदालतके चपरासीने आकर अनादिको सम्मन नजर किया। अनादिने देखा कि गवाहीका सम्मन है। उसकी कुछ समझमें न आया कि वह अचानक गवाह कैसे बन गया! सम्मन हाथमें लिये-हुए वह सीधा चौधरीजीके घर पहुंचा। चौधरीजीने आद्यन्त पढ़कर बताया—"इसमें क्या है! कह देना कि यह पोद्दारकी हद्में नहीं है।"

"आखिर यह है क्या?"—अनादिने पूछा। चौधरीने समझा दिया—"दीपू पोद्दारने बिना पूछे जोशीजीके बगीचेमें घुसकर कटहर तोड़ा था; जोशीजीको यह बात अखर गई। उसीका यह मामला है। जोशीजीने तुम्हें गवाह बनाया है।"

अनादि झुंझला उठा; बोला—"मुझे इसकी क्या खबर कि कब किसने कहाँ कटहर तोड़ा है? झूठमूठको हैरान करना! मैं तो यहाँवालोंकी भलाई करने आया था, ये लोग उलटे—"

चौधरीने कहा—"हैरान होनेकी इसमें कौनसी बात है भई? कचहरी यहाँसे छै कोसके करीब होगी, सवेरे ही उठकर टहलते

हुए चले जाना। और, तुम्हारी 'अच्छी बात' क्या लोग यों ही सुन लेंगे? पहले दो-चार मामले-मुकदमोंमें मदद करो। तब तो गाँवके लोग समझेंगे कि तुम भी गाँवके एक मुखिया हो!"

अनादिने कुछ जवाब नहीं दिया, सीधा अपने घर चला आया। थियेटर-पार्टीके मित्रोंने सम्मन देखकर जो सच बात थी वह कह दी। गाँवके मुखियोंने मिलकर अनादिको सिर्फ हैरान करनेके लिए ही यह षड्यंत्र रचा है। यह सुनकर अनादि मारे क्रोधके जल-भुनकर खाक हो गया, बोला— "अच्छा, पहले जुलाहे-मल्लाहोंको एकसाथ कर दूँ, उसके बाद समझ लूँगा।"

अनादि बड़े उत्साहके साथ अपने संकल्पको पूरा करनेमें लग गया। शरीफ आदमियोंके सिवा, और सब श्रेणीके लोग अनादिके भक्त हो गये। सभाका मंडप बिलकुल साफ-सुथरा कर दिया गया था। कलसे महासभा शुरू होगी। विभिन्न गाँवोंसे विभिन्न प्रकारके प्रतिनिधि और श्रोता आने लगे। दर्शकोंका ताँता बँधा गया। अनादि अपनी सफलता और अपने चेलोंकी कार्यपटुता देखकर दंग रह गया। इतनी आशा उसे हरगिज न थी। अनादिने अपने प्रधान शिष्य जुलाहे युवकको बुलाकर कहा—"तुमने खूब काम किया, तुम अच्छा कार्य कर सकते हो। मेरे पीछे तुम्हीं यहाँका प्रचारकार्य चलाते रहना; हर महीने मैं तुम्हें कलकत्तासे रुपये भेज दिया करूँगा।"

बुनकर-तनयने भर-मुँह हँसकर कहा—"इन आदमियोंको कितनी मुश्किलसे लाया हूँ, आपको मालूम नहीं! कोई आना

थोड़े ही चाहता था। कहते थे, उसमें क्या होगा! मैंने कहा, कलकत्तासे एक बड़े-भारी पंडितजी आये हैं, 'भागवत' सुनायेंगे। बस, चटसे सब राजी हो गये। अब आप जो करना चाहें, कर लें।" सामाजिक उन्नतिके लिए कोई नहीं आना चाहता, और 'भागवत' सुननेके लिए लोगोंका ताँता बँध गया, यह देख कर अनादिको बड़ा आश्चर्य हुआ। अवनत जातियोंके लिए सामाजिक उन्नतिकी कितनी भारी आवश्यकता है, इस बातको ये उजड्ड मूर्ख बिलकुल समझते ही नहीं। इन मूर्ख असहायोंको समझा ही देना है कि वे भी आखिर मनुष्य हैं!

दूसरे दिन अवनत जातियोंकी विराट सभाका अधिवेशन शुरू हुआ। गाँवके भले घरोंकी स्त्रियाँ और पुरुष बड़ी उत्सुकतासे जलसा देखने आये। अनादि पंडिताऊ ढंगके कपड़े पहननेके लिए घर गया था। इतनेमें गाँवके बड़े पंडितजी माधव मिश्र आ पहुंचे। उन्हें देखते ही जुलाहोंके सरदार रामलालने बड़ी भक्तिके साथ जमीनसे सिर लगाकर प्रणाम किया। पंडितजीने व्यंग्यमें हँसते हुए कहा—"कहिये सरदारजी! ब्राह्मण बन रहे हो क्या?"

दाँतों-तले जीभ दबाकर कान पकड़ते हुए रामलालने कहा—"राम राम राम! यह आप क्या कह रहे हैं!"

"तो फिर इन समाजियोंमें कैसे मिल गये?"

समाजियोंका नाम सुनते ही रामलालका मुंह सूख गया। बोला—"जी नहीं, पंडितजी, कसूर माफ हो पंडितजी, इन सब छोकड़ोंका घुटाला है सब। मुझे कुछ नहीं मालूम।"

इतना कहकर उसने कृत अपराधके लिए क्षमाकी भीख माँगी, और पंडितजीके चरणोंकी शरणमें बैठ गया। आध घंटे बाद अनादि भी आ पहुंचा। उसके सिरपर रेशमी पगड़ी, बदनपर गेरुआ वसन और छातीपर लाल रंगका रेशमी फूल लगा हुआ था, जिसपर सफेद रेशमी सूतसे लिखा था—"यतो धर्मस्ततो जयः।" अनादिको आते देख भक्त शिष्य-मंडली एकसाथ जयध्वनि कर उठी—"बन्दे मातरम्!"

इस शब्दसे लोग परिचित न थे; और न उन्हें ऐसे नारे बुलन्द करनेकी आदत ही थी। लिहाजा अधिकांश जनता नीरव ही रही। तब उत्साही बुनकर-सुतने जोरसे चिल्लाकर कहा—"बोलिये भाइयो"—बात खतम भी न हो पाई कि उपस्थित जनता एकसाथ चिल्ला उठी—"बोलो वृन्दावन-विहारी गोपाललालको जय! बोलो श्रीराधा-कृष्णजीकी जय!"

अब तो अनादिको आवेश आ गया। और दो-तीन दस्ता कागज निकालकर श्रोताओंको लगा समझाने। आवेशमें न-जाने क्या-क्या कह गया। अवनत जातियोंको उन्नत बनाना चाहिए, ब्राह्मणोंके कारण ही राष्ट्रकी ऐसी अधोगति हुई है, शास्त्रकारोंने बहुत ही पक्षपातसे काम लिया है, इत्यादि इत्यादि। नतीजा यह हुआ कि जो 'भागवत'की कथा सुनने आये थे, वे धीरज खो बैठे। कितने ही उठकर चल दिये। कितनोंने ऊल-जलूल बकना शुरू कर दिया। करीब दो घंटे बाद, व्याख्यान समाप्त करके, अनादिने कुरसीपर बैठकर कहा—"मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका, अब उन्नति करना तुमलोगोंके हाथमें है।

उन्नति तभी हो सकती है, जब छोटे-बड़ेका भेद बिलकुल मिट जाय। समस्त जातियोंमें परस्पर रोटी-पानीका चलन होना जरूरी है, और यह हमें करना ही पड़ेगा, इस बाधाको मिटाना ही होगा।"

सभामेंसे एक आदमी बोल उठा—"ठीक है, ब्राह्मण ठाकुर सभी-कोई खायँ, तो हम लोग भी खा सकते हैं।"

अब तो अनादि कुरसीपर खड़ा हो गया; बोला—"सुनो भाइयो, मैं ब्राह्मण हूं; मैं जो करूँगा, सो तुमलोग करोगे?"

अनादिके चेलोंने मिलकर एकस्वरमें कहा—"हाँ, करेंगे।"

इन्तजाम पहलेसे ही किया हुआ था। अनादिने कहा—"ला रे लोचना, पानी ला।"

लोचन एक दुसाधका लड़का था। हुक्म पाते ही एक गिलास पानी ले आया। अनादिने एक साँसमें उसे समाप्त करके कहा—"जिसने मुझे पानी पिलाया है, वह दुसाधका लड़का है; मैंने रास्ता दिखा दिया, अब तुमलोग आगे बढ़ो।"

मिनटोंमें सभास्थल रणक्षेत्रमें परिणत हो गया। पीछेसे मिश्रजी महाराज बड़े जोरसे चिल्ला उठे—"म्लेच्छ है, क्रिस्तान है!" साथ ही सभामेंसे बहुतसे लोग एकस्वरमें चिल्लाने लगे—"धोखेबाज है, धोखा देकर जात लेता है! क्रिस्तान है, समाजी है, फिरंगी है!"

अनादि जनताको समझानेकी व्यर्थ चेष्टा करता हुआ बाहर निकल आया। उसकी आँखोंसे आग निकल रही थी। संकल्प भंग होनेसे बेचारा हताश होकर सीधा अपने घर पहुंचा। कुछ

देर कम्प्लीट रेस्ट लेनेके बाद, फिर उसे सभाके समाचारसे कोई दिलचस्पी नहीं रह गई। मगर शामको जब खूनसे लथपथ रोता-बिलखता हुआ दुसाधका लड़का लोचन आकर सामने खड़ा हो गया, और अनादिको पानी पिलानेके अपराधपर खड़ाऊँ जूते और लाठी द्वारा जितनी तरहकी सजाएँ मिली थीं सब दिखा-दिखाकर रोने लगा, तो अनादिने उसे पाँच रुपये देकर विदा किया; और अपना बोरिया-बसना बाँधनेके काममें लग गया। उसका इतना कठोर परिश्रम, इतनी तैयारियाँ, इतनी कोशिशें, ऐसा उदार संकल्प, सब-कुछ लोचन दुसाधके एक गिलास पानीमें बह गया! दूसरे ही दिन अनादि गाँव छोड़कर कलकत्ता चल दिया।

७

अनादिकी नाव जब गौरीपुराके मुहानेपर पहुंची, तो सहसा किसीका कण्ठस्वर सुनाई दिया। अनादिने मुड़कर देखा, हाथमें गठरी लिये-हुए पार्वती और उसकी मा खड़ी है। पार्वतीकी माने कहा—"हम लोगोंको छोड़े जाते हो पंडितजी!"

अनादिने कहा—"अभी फिर आऊँगा, तब ले जाऊँगा।"

"आपकी बातपर मट्टी-मोल सब बेच-बाचकर—"

माकी बात काटकर पार्वतीने कहा—"तू जानती नहीं मा, ये सब मतलबके साथी हैं! इतनी बीत चुकी, तब भी होश नहीं आया तुझे?"

अनादि इस कुत्सित व्यंग्यको सुनकर दंग रह गया। तुरन्त ही नावके भीतर जाकर मल्लाहसे बोला—"चलाओ जल्दी।"

किनारेकी तीखी बातोंपर उसने कुछ ध्यान नहीं दिया। कुछ दूर निकल जानेपर अनादिने बाहर निकलकर मल्लाहसे पूछा—"यह लड़की कौन थी, जानते हो?"

मल्लाहने जरा मुसकराकर कहा—"आप जानते नहीं उसे? पुरोहितजीकी लड़की है!"

अनादिके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। बोला—"सो कैसे?"

"उसकी मा पुरोहितजीके घर काम करती थी। जातकी दुसाध है।"

अनादि दंग रह गया।

× × ×

अनादि आजकल मास्टरी करता है। लेकिन, समाज-सुधारका भूत अभी तक पूरा उतरा नहीं। हर इतवारको अब भी लोग उसे लालदिग्घी, या कम-से-कम कम्पनी-बागमें, लेक्चर देते हुए देखते हैं।

प्रचारकोंकी कमीके कारण उसकी समिति करीब-करीब टूट ही गई समझिये।

देशद्रोही

अमरेशने बी० ए० पास करके चटसे सरकारी स्कूलमें मास्टरी करना शुरू कर दिया। रात-भर जागकर एम० ए० परीक्षाकी किताबें पढ़ना और शामको लड़कोंके साथ खेलना, बस, इसके सिवा उसे कोई काम ही नहीं था।

स्वदेश-प्रेमकी बाढ़में उन दिनों सरकारी स्कूलों तककी नींव डगमगा रही थी। इतनेमें, एक दिन अचानक उस बाढ़ने सुप्रसिद्ध बैरिस्टर मि० दत्तको ऐकिक भगीरथ बनाकर दशरथपुर गाँवमें प्रवेश किया। मि० दत्तके नामसे लोग पहले ही से परिचित थे। अखबारोंमें उनके असाधारण त्यागकी अपूर्व महिमा पढ़ते-पढ़ते अमरेशका मन भी भीतर-ही-भीतर उत्साहित हो रहा था; और धीरे-धीरे उनके त्याग और चरित्रने उसे अच्छी तरह प्रभावित भी कर लिया था। जब उसे मालूम हुआ कि मि० दत्त उसके गाँवमें आ रहे हैं, तो वह बहुत ही चंचल हो उठा।

ठाकुर अमनसिंहके बंगलेपर मि० दत्त विश्राम कर रहे थे। सामने खुला हुआ मैदान है, जिसमें असंख्य नरमुंड दिखाई दे रहे हैं। उसमें गांधी-टोपी पहने और पीले रंगका पट्टा

लगाये हुए बहुतसे स्वयंसेवक शान्ति-रक्षा कर रहे हैं। अमरेश भीड़को चीरता हुआ सीधा मि० दत्तके कमरेमें जा पहुंचा, जहाँ वे अपने अनुयायियोंसे वेष्टित होकर सलाह-मशविरा कर रहे थे। उनके सामने जाकर वह नमस्कार करके खड़ा हो गया। एकने कहा – "लीजिये, अमरेश बाबू खुद ही आ पहुंचे!" अमरेशने उसकी बातपर कुछ ध्यान ही नहीं दिया, खड़ा-खड़ा वह मि० दत्तको देखने लगा। त्यागी कर्मवीरका यही तो योग्य वेश है! खादीका संक्षिप्त कुड़ता और एक मोटी चादर; बिखरे हुए लम्बे बाल! मि० दत्तने अमरेशकी श्रद्धापूर्ण दृष्टि ताड़ ली; बोले—"बैठिये, आप ही की बात हो रही थी। हमें आपकी जरूरत है।"

अमरेशने कुरसीपर बैठते हुए कहा—"मैं देशके किस काम आ सकता हूं?"

"सब काममें। आपको मैं एक जबरदस्त कामका भार दूंगा। सुनिये, आज अगर आप लोग मैदानमें न आयंगे, तो देशवासियोंकी आँखें कौन खोलेगा? अत्याचारसे जर्जरित भूखे मुरदे आदमियोंमें नवजीवन संचार करनेके लिए देशमाता आप लोगोंको पुकार रही है। आप उसकी पुकार नहीं सुनेंगे?"

इसके बाद, जालियानवाला-बागसे लेकर विहारके भूकम्प तक देशकी सारी दुर्घटनाएँ मि० दत्तकी भाषामें ऐसी करुण होकर प्रस्फुटित होने लगीं कि अमरेशकी आँखें आँसू बहाये बगैर न रह सकीं। मि० दत्तकी बात खतम होनेपर वह उठ कर खड़ा हो गया; और आवेग-गद्गद-कंठसे बोला—"आज मैं

अपनेको सम्पूर्णरूपसे आपके हाथ समर्पण करता हूं। देशके हितके लिए मेरे द्वारा जो कुछ सेवा हो सके, मैं करूँगा। आप सिर्फ आदेश देते रहियेगा।"

मि० दत्तने कहा—"मैं आजसे तुम्हें देशमाताके नामपर ग्रहण करता हूँ। एक बात तुमसे मैं यहीं कह देना चाहता हूं, खाने-पहरनेकी तुम्हें कोई तकलीफ न होगी। पर हाँ, देश गरीब है, तुम्हारी सेवा उचित मूल्यमें वह नहीं खरीद सकता। फिर भी, जहाँ तक हो सकेगा—"

अमरेश बीच ही में बोल उठा—"अपनी चिन्ता मुझे जरा भी नहीं है। घरपर मा हैं, उनकी आवश्यकताएँ बहुत ही थोड़ी हैं, मेरे कारण उन्हें तकलीफ न हो, बस इतनी निगाह रखियेगा।"

मि० दत्तने कहा—"उनका भार मैं अपने ऊपर लेता हूं। चलो बाहर, लोग हमारे लिए बाट देख रहे हैं।"

मि० दत्त सभामें जाकर खड़े हुए। पुरनारियोंने लज्जा और पुष्पांजलिकी वर्षा की। "बन्दे मातरम्" की बुलन्द आवाजसे सारा गाँव गूँज उठा।

इसके बाद, सम्पूर्ण जनताके सामने अमरेशको खड़ा करके, अपने हाथसे पुष्पमालासे भूषित करके, मि० दत्तने उसे स्थानीय जनताके नेतृत्व-पदपर अभिषिक्त किया। जनताने जयध्वनिके साथ उसे वरण किया।

एम० ए० परीक्षाकी किताबोंको बक्समें बन्द करके और डिप्टी-कलक्टरीकी नॉमिनेशनकी चिट्ठीको फाड़-फेंककर अमरेश शामको अपने गाँव चला गया। माको पहले ही से खबर लग

गई थी, अमरेशको देखते ही बोलीं—"तू नौकरी छोड़ आया अमर! आगे-पीछेका सब सोच-विचार लिया तो? बापका कुछ कर्जा भी तो सिरपर है, तू तो जानता ही है।"

अमरेशने कहा—"कुछ चिन्ता मत करो मा, देशमाताके आशीर्वादसे सब अच्छा ही होगा। जो महान त्यागका आदर्श आज मैं देख आया हूँ, उसे देखकर क्या कोई अपनी छोटी-सी चिन्ताकी चहारदीवारीके अन्दर बन्द रह सकता है मा? तुम आशीर्वाद दो, मा!"

अमरेशने माकी पद-धूलि लेकर सिरसे लगाई। माकी आँखें भी डबडबा आईं।

× × ×

उसके बाद, सिर्फ एक दिन मैंने अमरेशको देखा था। गरमीकी छुट्टियोंमें वह घर आया था। शामसे वैसाखी आँधी शुरू हुई थी, आधी रात तक आँधी-मेह थमा नहीं था। बाहरवाली कोठरीमें पड़ा-पड़ा सेक्सपीयर पढ़ रहा था, सहसा पुकार सुनी—"शम्भू, घरपर हो क्या?"

"कौन?"

"मैं हूं, अमरेश।"

अमरेश, और ऐसे आँधी-मेहमें! दरवाजा खोल दिया। भीतर आकर जो मनुष्य-मूर्ति सामने खड़ी हुई, अत्यन्त परिचित व्यक्ति भी उसे पहली दृष्टिमें अमरेश नहीं कह सकता। उसका सुन्दर रंग मटमैला हो गया है। सिरपर बड़े-बड़े बिखरे हुए बाल हैं; उनमेंसे टप-टप पानी टपक रहा है। बदनपर एक

फटा हुआ मैला कुड़ता है, उसकी बाँहपर पीले रंगका एक पट्टा लगा हुआ है, जिसपर लिखा है 'बन्दे मातरम्'। धोतीका निचला हिस्सा पानी और कीचड़से सना हुआ है। हाथमें एक मोटी छड़ी है। उसकी यह दशा देखकर मेरी आँखें भर आईं। अमरेशने मेरे मुँहकी तरफ देखकर कहा—"दुःखित मत होओ शम्भू! विधाताका विधान है यह। कठोर तपस्याके बिना देशकी मुक्तिका दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है।"—कहता हुआ अमरेश जमीनपर बैठ गया।

"सब सुनूँगा, कपड़े बदल लो पहले।"

"ऊँ-हुंक्! कपड़े बदलनेका वक्त नहीं है। कुछ खिला सकते हो तो ले आओ; बड़ी भूख लग रही है।"

भाभीको जगाकर रसोईमें जो कुछ बचा था, ले आया। अमरेश खाते-खाते कहने लगा—"आज चौथा दिन है शम्भू, पेटमें अन्न नहीं गया! १७ तारीखको हुसैनगंजमें सभा करके करमदह आया; वहाँसे नौगाँव, फिर आज सवेरे चलकर अब तुम्हारे यहाँ—"

"गजब! नौगाँवसे सीधे यहाँ—चालीस मील!"

"मील और कोस तो गिने नहीं भाई, माके नामपर चला आ रहा हूं। अब फिर तड़के ही रूपसपुर पहुंचना है।"

मेरे तो छक्के छूट गये। हमारे गाँवसे रूपसपुर करीब बीस मील होगा। चालीस मीलकी थकावट लेकर और ऐसे आँधी-मेहमें बीस मील और चलनेकी जो हिम्मत रखता हो, उसे साधारण मनुष्य हर्गिज नहीं कह सकता। रोकनेपर वह

रुकेगा नहीं, मैं जानता था ; फिर भी मैंने कहा—"रूपसपुर कल सवेरे जानेसे काम नहीं चलेगा ?"

अमरेशने लाठी उठाते हुए कहा—"सो कैसे हो सकता है, भाई ! कल सवेरे ही मि० दत्तका मोटर-बोट पहुंच जायगा घाटपर। उससे पहले ही मुझे पहुंच जाना है वहाँ। स्वागत-सभा, उनके खाने-पीने और आरामका सब इन्तजाम करना है मुझे।"

"घंटे-भर आराम करके जाना। जरा पानी थम जाने दो, तब जाना !"—मैंने कहा।

अमरेश उठकर खड़ा हो गया ; और मेरा हाथ पकड़कर बोला—"कुछ खयाल मत करना भाई, तुम्हारी बात न रख सका। आँधी-मेहका मुँह देखनेसे काम नहीं चलता। क्लाइवकी जिस सेनाने बंगाल जीता था, उसने आँधी-मेहकी तरफ नहीं देखा, देखा था सामने। आज अगर उनके हाथसे देश वापस लेना है, तो हमें भी सामने देखना होगा, ऊपर या पीछेकी तरफ ताकनेसे काम नहीं चलेगा। सामनेका-मार्ग ही सीधा मार्ग है।"—कहता हुआ अमरेश बाहर निकला और सुनसान निशीथके अन्धकारमें विलीन हो गया।

संघबद्ध काले बादलोंके लगातार गर्जनके साथ एक तीव्र स्वर दूरसे सुनाई दिया—

"जय-जय भारत-माताकी जय !
तन-मन-धन जीवनको अपने
माके चरणोंमें बलि कर दो,—"

इसके बाद, फिर कभी अमरेशके साथ भेंट नहीं हुई। मगर उसके बारेमें सब समाचार मुझे मालूम होते रहे हैं।

गाँव-गाँव और कसबे-कसबेमें अमरेशके देशसेवा-व्रतकी पुण्यकथा कीर्तन करती हुई घूमने लगी। उसकी निष्ठा विश्वास और चरित्रकी महिमासे आकृष्ट होकर लोगोंके झुण्ड-के-झुण्ड जब उससे उपदेश लेने आते थे, तो वह हँसकर कहता था—"मैं कोई नहीं हूं। सेवा-व्रतकी दीक्षा लेना चाहते हो तो आदर्श पुरुषकी शरण लो।" इस तरह क्षेत्र तैयार करके बीज बोनेके लिए वह मि० दत्तको शहरसे बुला लाता था। इस तरह, सिर्फ एक सालमें अमरेशने मि० दत्तको लाखों आदमियोंका राष्ट्रीय गुरु बना दिया।

सहसा एक दिन, पुलिस आकर व्याख्यान-मंचसे अमरेशको गिरफ्तार करके ले गई। अमरेशने उपस्थित विक्षुब्ध जनताको सम्बोधित करके कहा—"भाइयो, मैं चला। आप लोगोंने जिस व्रतको लिया है, उसे जीवन देकर सफल करना। अपने अभाव कष्ट और आवश्यकताओंकी बात सब मि० दत्तसे कहना; उनके उपदेश और आदेशके अनुसार चलना; जरूर सिद्धि होगी।"

राजद्रोहके अपराधमें अमरेशको तीन सालकी कड़ी सजा हो गई। अमरेशने मुस्कराकर कहा—"बन्दे मातरम्!" और जेल जानेसे पहले एक स्लिपपर मि० दत्तके लिए लिख भेजा—"माका खयाल रखियेगा।"

उसके बाद अमरेश जेलकी गाड़ीपर सवार हुआ; और स्वयंसेवकगण जयध्वनि करके घर लौट आये।

लम्बे तीन वर्ष। इस बीचमें कितने परिवर्तन हो चुके हैं, कोई ठीक है! देश-सेवाकी धारा और देश-प्रेमका नाम-धाम सब-कुछ बदल गया है। नये-नये दल संगठित हुए हैं। उनके काम नये, कामकी गति न्यारी, सब कुछ नया।

इस नवीन भावके आवेष्टनमें, एक दिन वर्षाके प्रभातमें खाँसी और यक्ष्माकी बीमारी लिये-हुए दुबला-पतला रूखा-सूखा अमरेश जेलसे बाहर निकला। बाहर परिचित कोई भी नहीं दिखाई दिया। दिन-भर शहरके एक सस्ते होटलमें आराम करके शामकी गाड़ीसे वह अपने गाँवके लिए रवाना हुआ।

पौ फटनेके बाद, तड़के ही घरके दरवाजेका कड़ा खटखटाकर पुकारा—"मा!"

कुछ जवाब नहीं मिला। थोड़ी देर बाद हुक्का हाथमें लिये नन्दू पोद्दारने आकर हुड़का खोला।

अमरेश मारे आश्चर्यके दंग रह गया, बोला—"आप?"

पोद्दारने चौखटके बगलमें हुक्का रखकर हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहा—"जी, और चारा ही क्या था! ब्राह्मणका घर मुसलमान नीलामपर ले लेता, मुझसे देखा न गया। इसीसे तो दो सौ अट्ठाईस रुपये देने पड़े। सब टूट-फूट गया था, फिरसे सब मरम्मत कराना पड़ा। बड़ा खरच—"

अमरेशने घबराकर पूछा—"मा?—"

पोद्दार जरा घबरा-सा गया, सिर खुजलाते हुए बोला—"जी, वे तो पुरोहितजीके यहाँ—"

अमरेशने बात न करके सीधा पुरोहितजीके घरका रास्ता

लिया। पोद्दारकी पहली बातसे ही उसने समझ लिया कि पिताके कर्ज अदा होनेमें घर-द्वार सब बिक गया।

पुरोहितानीजी उस समय आँगन बुहार रही थीं, अमरेशको देखते ही म्लान मुखसे बोलीं—"आओ बेटा, कब आये ?"

अमरेशने प्रणाम करके कहा—"आज ही। मा कहाँ हैं ?"

पुरोहितानीजीने कहा—"मुंह-हाथ धोओ, आराम करो।"

अमरेशकी आशंका उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई; उसने फिर पूछा—"मा कहाँ हैं ?"

पुरोहितानीजी फूट-फूटकर रोने लगीं। अमरेश दोनों हाथोंसे मुंह ढककर वहीं-का-वहीं बैठ गया।

दोपहरको माके मरनेका सब हाल सुना। लड़केको तीन सालकी सजा हुई सुनकर विधवा माको मूर्छारोग हो गया था; उसपर पावनेदारके तकाजे, अन्तमें घर-द्वारका नीलाम, इन सबका नतीजा यह हुआ कि मा पागल हो गई। पागल होनेके बाद अन्न-जल छोड़ दिया; और इस तरह आखिर बेचारी मर ही गई। पुरोहितानीजी सारा हाल सुना गई, और अमरेश पत्थरकी मूर्तिकी तरह बैठा-बैठा चुपचाप सब सुनता गया।

अमरेशने कलकत्ता आकर देखा कि पहलेका वह कलकत्ता अब रहा ही नहीं! स्कूल-कालेजोंमें पहलेकी तरह लड़के जाते-आते हैं। जिस चीजके विरुद्ध तीन-चार वर्ष पहले भयंकर विद्रोह विचित्र कंठोंसे ध्वनित हो उठा था, उसी कौन्सिलकी तरफ देशके राष्ट्रीय आन्दोलनका स्रोत तेजीसे

दौड़ा चला जा रहा है। जिनके त्यागके आदर्शने उसे पागल बना दिया था, उन्हींकी मोटरें बदस्तूर दिनके दस बजे हाईकोर्ट जाकर ठीक शामके पांच बजे घर लौट आती हैं।

पासमें विशेष कुछ तो था ही नहीं। लिहाजा मछुआ-बाजारके एक होटलमें रोज एक वक्त खाकर वह मि० दत्तसे मिलनेकी कोशिश करने लगा। मगर उनका नेतृत्व उस समय मुवक्किलोंके गहन वनमें भटक रहा था, और अगण्य संस्थाओंमें शीर्षस्थान प्राप्त करके साधारण लोगोंके लिए उनके दर्शन तक दुर्लभ हो गये थे। मुलाकात नहीं हुई।

पर, अमरेशको तो मि० दत्तसे मिलना ही था। आर्थिक सहायताके लिए नहीं, माकी मृत्युकी जवाबदेहीके लिए।

एक दिन मौका लगा। अखबारोंमें सूचना पढ़कर एक दिन वह कौन्सिल-चुनाव-कमेटीकी बैठकमें जा पहुंचा। आगामी निर्वाचनके लिए जरूरी बैठक हो रही थी। जोरोंके साथ तर्क-वितर्क चल रहा था। इतनेमें सहसा अमरेशने घुसकर जोरोंसे कहा—"मि० दत्त, बाहर आइये।"

मि० दत्तने भौंहें चढ़ा लीं। एक सदस्यने कहा—"कौन है यह लड़का! ए:, तुम बाहर आओ।"

अमरेशने मि० दत्तकी ओर देखा; उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया। अमरेश मारे क्षोभ और क्रोधके उफनता हुआ बाहर निकल आया।

होटल लौटकर देखा कि पहलेके स्कूलमें फिरसे मास्टरी पानेके लिए जो दरखास्त दी थी, वह नामंजूर होकर वापस आ

गई है। अमरेश शून्य दृष्टिसे बाहरकी ओर देखता रहा। बाहर सड़कपर उस समय असंख्य मोटरोंपर स्वयंसेवकोंके झुण्ड-के-झुण्ड देशनायक मि० दत्तके लिए 'वोट' संग्रह करते हुए तरह-तरहके नारे बुलन्द कर रहे थे।

दूसरे दिन, कालेज-स्कायरमें विराट निर्वाचन-सभा हो रही थी। फटे-पुराने मैले कपड़े पहने भूखा अमरेश वहाँ पहुँचा। आँखें उसकी, शायद रोते-रोते, सुर्ख हो रही थीं। ज्यों ही मि० दत्त मंचपर जाकर खड़े हुए और 'भाइयो' कहकर कुछ कहना शुरू किया, त्यों ही भीड़को चीरता हुआ अमरेश उनके सामने जाकर पागलकी तरह चिल्ला उठा—

"ढोंगी! पाखंडी! धोखेबाज—"

अधीर जनता एकाएक क्रुद्ध होकर चिल्ला उठी—"देशद्रोही, सी-आई-डी—"

क्षण-भरमें अमरेशकी कमजोर देह जूता-लात-थप्पड़ोंके मारे खूनसे लथपथ होकर जमीनपर लोटने लगी।

× × ×

दूसरे दिन, तमाम अखबारोंमें विस्तारके साथ देशद्रोही अमरेश द्वारा 'देशनायककी हत्याकी चेष्टा' का समाचार तीव्र भाषामें छप गया; सम्पादकोंने भी अपने सम्पादकीय स्तंभोंमें इसपर प्रकाश डाला।

देशद्रोही अमरेश उसी दिन आधी रातको जीवन देकर अपने देशद्रोहका प्रायश्चित्त समाप्त कर चुका था; लिहाजा इस बातका प्रतिवाद करनेवाला भी कोई नहीं था।

माह-पूसकी दुपहरी है। आँगनमें धूपकी ओर पीठ किये बंसी चौधरी पीतलकी टूटी-फूटी थालीमें बाजरेकी रोटी और चनाका साग खाने बैठा ही था। कई थिगरेवाली फटी-पुरानी मैली-कुचैली छोटी धोतीसे किसी तरह तन ढके उसकी स्त्री पारो पानीका लोटा लिये सामने खड़ी थी। इतनेमें किसीने उसे पुकारा—"चौधरी! तनिक बाहर आना।"

जमादारकी आवाज सुनते ही बंसी उठा चाहता था कि पार्वतीने चटसे कहा—"मौंहको कौर तौ खाय लेउ।"

"कौर खानेसे मेरा पेट थोड़े ही भरेगा, पारो! तू यहीं खड़ी रह, मैं अभी आया।"

बंसी हाथ धोकर उठ गया।

दस ही मिनट बाद बंसीने आकर निराशाके स्वरमें कहा—"मेरे भाग्यमें तेरे हाथकी बाजरेकी रोटी और चनाका साग नहीं बदा, पारो! ला, मेरी पगड़ी ला दे, अभी फिर जाना होगा।"

"जा दुपहरीमें फिरको मरि गयौ, सो तुम आग डारिबे जाउगे?"—पारोने कहा।

"चिल्ला मत, पगली! लाट सा'बकी गाड़ी आ रही है, पहरा देने जाना होगा लैनमें। ला दे, पगड़ी उठा दे। ठहर जाना जमादार-भइया, पगड़ी बाँध लूँ, अभी आता हूँ।"—दरवाजेकी ओर मुँह करके बंसीने कहा।

बाहरसे जवाब आया—"जल्दी करो चौधरी! चलना है अभी पूरा छै कोस रास्ता!"

सिरसे पगड़ी बाँधकर बंसी जब जाने लगा, तो पारोने बाजरेकी दो रोटी पतिके सामने ले जाकर बड़ी बिनतीके साथ कहा—"तुमें मेरी किसम है, जे द्वै पेटमें डारिके एक लोटा पानी पी जाउ। बा दिनऊँ बनाई, सो तुम खाइ नहिं सके, जाने काँकौ मुरदा जराइबे चले गये! आज फिर चले—"

"अभी खानेसे चला नहीं जायगा, पारो। शामको गाड़ी पार करके पहर रातको ही लौट आऊँगा। तू चूल्हेपर कसेंड़ीमें पानी चढ़ा रखना, हाथ-पैर धोनेको। रोटी-साग अच्छी तरह ढकके रख देना, आके खाऊँगा, अच्छा!"—कहकर बंसीने एक बार थालीकी ओर सतृष्ण दृष्टिसे देखा; और लट्ठ उठाकर तुरन्त ही चल दिया।

पतिकी बहुत दिनसे बाजरेकी रोटी और चनेके सागपर तबीयत थी। बंसीका यह सबसे ज्यादा प्यारा भोजन था। पारोकी बड़ी इच्छा थी कि पतिको अपने सामने बिठाकर अपने हाथसे बाजरेकी रोटी और चनेका साग खिलावे; पर दो बार बनाया, सब-कुछ तैयार हो गया, मगर खिला न सकी। आज भी, बेचारी साग और रोटियोंको अच्छी तरह रखकर धोतीके छोरसे आँसू पोंछकर रह गई।

घरके विघ्नको तो बंसी किसी तरह टाल आया, पर रास्तेमें एक और विघ्न आ खड़ा हुआ। गाँवके बाहर कुआपर पुर चल रहा था, बंसीका सात वर्षका लड़का मुन्नी वहाँ खड़ा-खड़ा

तमाशा देख रहा था। कभी-कभी और-और लड़कोंके साथ वह भी पानीकी क्यारी काटकर उसके पानीसे अपने कृत्रिम खेतमें पानी दिया करता था; यह उसका दुपहरका नित्यकर्म था। बंसी उसकी निगाह बचानेके लिए दबेपाँव आ रहा था, मगर फिर भी मुन्नीको धोखा न दे सका। पिताकी परिचित नीली पगड़ी उसने दूरसे ही देख ली थी; पर पिता दूसरी राहसे चले जायेंगे, इस डरसे उसने अपने हाव-भावमें चंचलता नहीं आने दी। ज्योंही बंसी कुआके पाससे निकला, मुन्नी चटसे उछलकर रास्तेपर आ खड़ा हुआ, और बापके कुड़तेका छोर मुट्ठीमें लेकर बोला—"काँ जाय रये औ दद्दा ?"

बंसी बड़ी मुसीबतमें पड़ गया। सच कहनेसे मुन्नी संग जानेके लिए जिद करेगा। जरा सोचकर बोला—"जमनाजी।"

संसारमें मुन्नी सिर्फ एक ही जगहसे डरता है; जमुनाके रास्तेमें जो पीपलका पेड़ पड़ता है, मुन्नीकी धारणा है कि उसपर भूत-प्रेत रहते हैं; किसी सूत्रसे यह तत्त्व उस बच्चेके मस्तिष्कमें घुस गया था; और अब तो उसने वहाँ अपना घर ही बना लिया है। जमुनाका नाम सुनते ही उस पीपलके पेड़को याद करके वह चौंककर पीछे हट गया, बोला—"संझ'ईकूं लौट अइयो दद्दा, अच्छा!"

पुत्रकी शंका-विह्वल दृष्टि देखकर बंसीने कहा—"साँझके पहले ही मैं आ जाऊँगा बेटा, जा तू घर जा।" इसके बाद बेटेकी मिट्टी लेनेके लिए हाथ बढ़ाकर उसे छातीसे लगाना ही चाहता था, इतनेमें पीछेसे जमादार बोल उठा—"रास्तेमें खड़े-खड़े अब देर क्यों कर रहे हो चौधरी, अबेर हो रही है।"

क्या करता बेचारा, झुककर झटपट एक मिट्टी लेकर बेटेसे बोला—"घर जा बेटा, अम्मा तेरी रोटी लिये बैठी है, चनेका साग बना है, जा जल्दी।" चनेके सागका नाम सुनते ही वह बिना कुछ कहे-सुने घरकी ओर दौड़ा, और कुछ दूर जाकर नीमके पेड़की ओटमेंसे मुँह निकालकर बापको जरूर-जरूर सामसे पहले आनेके लिए दुबारा याद दिला गया।

२

जाड़ोंका छोटा-सा दिन बहुत पहले ही खतम हो चुका था। हर चालीस हाथकी दूरीपर चौकीदार नामधारी एक-एक मानव-सन्तान कंधेपर लाठी रखे लाट साहबकी स्पेशल ट्रेनकी प्रतीक्षामें खुले मैदानकी ठंडी हवामें खड़े हुए मारे जाड़ेके काँप रहे थे। गाड़ी आनेका वक्त था शामको, मगर पहर रात बीत गई, गाड़ीका कहीं पता ही नहीं। बंसी अधीर हो उठा। आँखोंके सामने वह घरका दृश्य देखने लगा, पीतलकी थालीमें बाजरेकी रोटी और चनेका साग परोसकर दिया जलाकर पारो अब तक उसकी बाट देख रही है। बंसीने पूछा—"गाड़ीकी कुछ खबर मिली, जमादार?"

जमादारको खुद ही अच्छा नहीं मालूम हो रहा था; बोला—"मालिक हजूरका हुकुम तामील करने आया हूँ, भइया। थानेसे तो यह कह दिया था कि गाड़ी सामको जायगी, पहर रात तो बीत चुकी! दोहर भी तो नहीं लाया संगमें!"

जमादारने सिरकी पगड़ी खोलकर देहसे लपेट ली। जाड़ा तब बराबर बढ़ता ही जाता था; बेचारे सब ठिठुरे जा रहे थे।

वास्तवमें स्पेशल ट्रेन निकलनेका समय शाम ही को था, पर छूटनेका समय जो पाँच घंटा पीछे कर दिया गया था, उसकी खबर गँवई-गाँवके चौकीदारों तक कौन पहुंचाता !

इतनेमें बादल घिर आये। चौकीदारोंमें बेचैनी-सी दिखाई देने लगी। इसके बाद कहीं पानी बरसने लगे तो फिर जान लेकर घर लौटना मुशकिल होगा, चौकीदारोंने यह बात स्पष्ट भाषामें जमादारके कानों तक पहुंचनेमें कसर नहीं रखी। जमादारने एक छोटी-सी पोटली ऊंची करके कहा—"जाड़ेकी दवा संग लेता आया हूँ, भइया ! आओ तो देखें !"

इशारा सभी-कोई समझ गये। पाँच-ही-सात मिनटोंमें "बम बम महादेव" और "शिवशंकर, काँटा लगे न कंकर" की आवाजसे सुनसान रेल-लाइनका किनारा गूँज उठा और गाँजेके धुएँसे अँधेरा और भी धुआँधार हो गया।

जमादारने बुलाया—"चौधरी, कहाँ हो ?"

बंसीने जवाब दिया—"ऊँ-हुंक् ! मैं नहीं पीऊँगा भाई सा'ब।"

किसी समय वह पूरा गँजेड़ी था, पर ढाई-तीन वर्ष हुए पारोने उसे सुहाग-सींदूरकी कसम दिलाकर नशा छुड़ा दिया है ; तबसे वह गाँजा पीना तो दूर रहा, चिलम तक नहीं छूता। जाड़ेकी दवा पीकर सब चौकीदार सन्नाटेमें आ गये। सिर्फ बंसी घुटनोंमें सिर देकर मारे जाड़ेके काँपने लगा।

भँस भँस ! भँस-भँस !

"उठो, सब खड़े हो जाओ ! कंधेपर लाठी रखकर ठीक सामने देखते रहना।"—जमादारने आवाज दी।

भंस-भंस ! भंस-भंस !

गाड़ी चली गई ; मालगाड़ी थी।

भुंभलाकर सब चौकीदार बेचारे तकदीरको कोसने लगे। जमादारने कहा—"जाड़ेकी दवा फिरसे बनाओ तो देखें, सुसरा भागता है कि नहीं !"

दवाका सेवन होता रहा ; दूर ही से बंसी धुआँकी ओर ताकता रहा, पर हिला नहीं वहाँसे।

रातको करीब दस-ग्यारह बजे दो-एक बूँदें भी पड़ीं। बंसी किसी तरह वहाँसे उठा, देखा कि साथी-लोग चार-पाँच जने इकट्ठे होकर जमीनपर पड़े सो रहे हैं।

अब तो बंसीको ईर्ष्या-सी होने लगी। उसकी सारी देह उस समय मारे जाड़ेके ठिठुरी जा रही थी, पैरोंके नीचे कंकड़ ऐसे चुभ रहे थे जैसे बर्फके काँटे हों। कुछ दूरीपर जमादार रेलके तारोंके सहारे बैठा ऊँघ रहा था। बंसी कुछ देर तक न-जाने क्या सोचता रहा, उसके बाद जमादारकी गाँजेकी पोटली उठा लाया। चिलम सुलगाकर उसने मन-ही-मन मृदु-स्वरमें कहा—"कुछ बुरा मत मानना, पारो ! भगवान करें तेरा सुहाग-सींदूर हमेशा बना रहे। आज बिना पीये बचूँगा नहीं।"

"बम ! बम ! महादेव !"

जमाना बीत गया छोड़े, अनभ्यासके कारण कसके दम लगाते ही बंसीको चक्कर आ गया ; अपनी जगहपर जाने लगा तो टकराकर लाइनकी तरफ गिर गया ; चिल्ला उठा—"माथेपर जरा पानी देना, हो जमादार-भइया ! दुनिया घूम रही है !"

दिन-भरका भूखा जाड़ेका मारा था बेचारा। भरसक चिल्लाकर कहनेपर भी उसकी आवाज जमादारकी नींद न छुड़ा सकी।

जाड़ेकी आधी रात है। ओसके आच्छादनके नीचे कुण्डली बाँधकर सोये हुए चौकीदारोंका झुंड थरथर काँप रहा था। इतनेमें दूसरे किसी सजग प्राणीका कंठस्वर सुनाई दिया—"लाट सा'बकी गाड़ी आ रही है! लाट सा'बकी गाड़ी!"

सफेद चमकती हुई आलोक-शिखासे निशीथके अंधकारको विदीर्ण करता हुआ मानो रक्त-चक्षु लौह-दानव दौड़ा आ रहा हो। चौकीदारोंका झुण्ड काँपता हुआ भड़भड़ाकर उठ बैठा। सबके सब अपनी-अपनी जगहपर खड़े हो गये। उठा नहीं सिर्फ एक आदमी।

जहाँ बंसी चौधरी पहरा दे रहा था, वहाँसे बहुत ही क्षीण एक आर्तनाद सुनाई दिया; सो भी क्षण-भरके लिए। इञ्जन किसी एक अज्ञात वस्तुसे बाधा पाकर जरा हिला, पर उसकी गति जरा भी मन्द नहीं हुई।

लाट सा'बकी गाड़ी चली गई। दूसरे दिन सवेरे अखबारोंमें छप गया—लाट साहबकी स्पेशल ट्रेन निर्विघ्न आ पहुँची।

× × ×

बंसी चौधरीकी प्राणहीन देह जब शहरके 'मुरदा-घर'से शत-विदीर्ण होकर वापस आई, तब पारोकी सहेजकर रखी हुई बाजरेकी रोटी सूखकर लकड़ी हो चुकी थी और चनेका साग बुस चुका था।

पराया लड़का

आजसे चालीस साल पहले पंडित शम्भूनाथने अपने गाँव झाऊपुरामें पाठशाला खोली थी ; और तबसे अब तक वे उसके 'गुरुजी' बने हुए थे। पंडित शम्भूनाथका सम्पूर्ण यौवन इसी पाठशालामें बीता है ; और मौतकी अन्तिम घड़ियों तक सारा बुढ़ापा भी यहीं बीतेगा, लोगोंकी यही धारणा थी। चालीस सालके इस लम्बे अरसेमें, दुर्गा-पूजाकी छुट्टियोंके सिवा, किसीने कभी उनकी पाठशालाका दरवाजा बन्द नहीं देखा। इसीसे, उस दिन अचानक पाठशालाके दरवाजेपर ताला लगा देखकर लोग बड़े ताज्जुबमें पड़ गये।

शामका वक्त था। दो-एक पड़ोसी कुतूहलवश पंडितजीके घर आये, असल बात जाननेके लिए। पंडितजी उस समय अत्यन्त प्राचीनकालके अपने कैम्बिसके बैगमें अपनी तीनों धोती और दो मिरजई तह करके रख रहे थे। पड़ोसियोंने आकर पूछा—"क्या बात है पंडितजी ?"

"चल दिया भइया, अब शरीर नहीं चलता। कुछ दिन घूम आऊँ। मधुसूदनसे कह चला हूं ; वह पाठशाला देखेगा। घर-द्वार जैसा है वैसा पड़ा रहेगा। अब क्या होगा इन सबका !"—कहते हुए उन्होंने बैग उठाकर उसका वजन

आजमाया ; और बोले—"रतनको वजीफा मिलने लगता भइया !" और एक गहरी साँस लेते हुए उन्होंने जेबमेंसे एक चिट्ठी निकालकर एकके हाथमें थमा दी।

उन्होंने चिट्ठी पढ़ी ; और कहा—"इसे क्यों रख छोड़ा है फजूलमें ? जब-जब देखेंगे तब-तब याद आयेगी और दुःखी होंगे।"

वृद्ध शम्भूनाथने चटसे चिट्ठी ले ली ; और कहा—"नहीं, रहने दो।" फिर बोले—"इस बूढ़ेको सब याद रखना भाई ! लौटनेपर फिर मुलाकात होगी। अब देर नहीं करूँगा। जय श्रीसिद्धिदाता गणेशजीकी जय !"—कहते हुए उन्होंने बेंतकी मोटी लाठीके सिरेपर बैग लटकाया और लाठी कंधेपर रख ली। चलते वक्त बोले—"सिर्फ एक बात मैं मधुसूदनसे कह चला हूं, और तुम लोग भी याद दिला देना, बच्चोंपर वह कतई हाथ न उठावें ! कौन कब चला जायगा, किसे खबर है ! दो दिनके लिए क्यों फजूलमें ;—जय श्रीगणेशजीकी जय !"

पंडित शम्भूनाथ चले गये।

रामचन्द्र जोशीने कहा—"पुत्र-शोकमें राजा दशरथने प्राण दे दिये थे, शम्भू पंडितकी तो गिनती ही क्या ! ओहो, रतन लड़का बड़ा अच्छा था।"

शम्भूनाथकी स्त्री रतनके पैदा होनेके दूसरे ही दिन मर गई थीं। उसके बाद फिर उन्होंने ब्याह नहीं किया ; और साथ ही रतनकी माकी जगह उन्होंने खुद ले ली। धीरे-धीरे रतन बड़ा हुआ ; और पाठशालामें पढ़ने लगा। इस साल उसने

प्राइमरी वृत्ति-परीक्षा दी थी, पर नतीजा निकलनेके महीने-भर पहले ही एक दिनके बुखारमें अचानक उसकी मृत्यु हो गई।

असीम धीरजके साथ शम्भूनाथने इस चोटको सह लिया; पाठशाला बकायदा चलती रही; पर उस दिन परीक्षाका फल और उसके साथ ही लड़केको वजीफा मिलनेकी खबर पाकर वे धीरज खो बैठे। पुत्र-शोकने नया रूप लेकर आज उन्हें बुरी तरह घायल कर दिया। घरमें उन्हें कतई अच्छा नहीं लगता और पाठशालामें जाते तो सबसे पहले उनकी निगाह उसी जगह पड़ती जहाँ रतन बैठा करता था, और तब उनकी छाती बैठ जाती। यही वजह है कि आज बेचारेको साठ सालकी उमरमें जिन्दगीमें पहले-पहल गाँव छोड़कर बाहर जाना पड़ा।

२

चार-पाँच महीनेमें तीर्थयात्रा खतम हुई; और साथ ही पूँजी भी निबटनेको आ गई। तब पंडितजीने तय किया कि कहीं नौकरी करेंगे; पर उनका बुढ़ापेका शरीर किसीके काम न आया। लिहाजा पैदल ही देश लौटनेका इरादा करके यात्रा शुरू कर दी।

पहली शाम पड़ी काल्लूपुरमें। वहाँके जमींदारोंकी अतिथिशालामें रात बिताकर सवेरे जब कि पंडितजी इष्टमन्त्र जप रहे थे, उस समय एक लड़का उनके सामने आ खड़ा हुआ और खड़ा-खड़ा पंडितजीकी तरफ एकटक देखता रहा। थोड़ी देर बाद वह अचानक पूछ बैठा—"तुम कौन हो?"

लड़का पंडितजीको अच्छा लग गया ; उन्होंने मंत्र जपना स्थगित रखकर कहा—"तुम कौन हो पहले बताओ !"

लड़केने कहा—"मैं रतन हूँ।"

'रतन' नामसे पंडितजीकी छाती धड़क उठी। कुछ देर चुप रहकर उन्होंने कहा—"तुम किसके लड़के हो ?"

"बापूजीका।"

पंडितजीने रतनका हाथ पकड़ते हुए कहा—"मैं भी बापूजीका लड़का हूँ, मेरा नाम है शम्भू पंडित।"

रतनने जल्दीसे कहा—"तुम शम्भू हो ? बापूजीने तो तुमको बुलाया था। चलो।"—कहकर वह पंडितजीका हाथ पकड़कर खींचने लगा।

पंडितजी समझ गये कि बच्चा गलती कर रहा है ; फिर भी उठ खड़े हुए ; बोले—"चलो चलें।"

उनका मंत्र जपना अनिश्चित कालके लिए स्थगित रह गया।

बड़े बाबू यानी ठाकुर साहब उस वक्त फर्शपर बैठे हुए हुक्का पी रहे थे ; इतनेमें शम्भू पंडितका हाथ पकड़कर रतन हाजिर हुआ ; और बोला—"बापूजी, तुम बुला रहे थे न शम्भूको, मैं ले आया।"

बड़े बापूने हँसकर कहा—"किसे ले आया रे ?"

"तुमने कहा था शम्भूको बुलाओ।"

रतनकी बात सुनकर ठाकुर साहब समझ गये कि गलती कहाँसे शुरू हुई है। उन्होंने पंडितजीसे कहा—"आपका नाम भी शम्भूनाथ होगा, इसीसे बच्चा आपको खींच लाया है। मैंने

अपने कारिन्दा शम्भूको बुलाया था। आइये, बैठिये आप।"

शम्भू पंडित बैठ गये। बातों-ही-बातोंमें वे अपनी सारी जीवन-कथा कह गये ; और अन्तमें बोले—"अब थोड़े दिनका मेहमान ठहरा, कहीं भी जरा गुजर-लायक जगह मिल जाय तो बाकीके दिन भी कट जायँ।"

बड़े बाबूको दया आ गई। बोले—"यहीं रह सकते हैं ; कोई बात नहीं। लल्लाकी देख-भाल कीजियेगा। माहवारी दस रुपया और खाना-पहनना ;—चल जायगा ?"

शम्भू पंडित मारे खुशीके फूले न समाये ; बोले—"खूब ! खूब ! बड़े दयालु हैं आप।"

३

पढ़नेका वक्त सुबह-शाम एक-एक घंटा बँधा हुआ था ; पर गुरु और शिष्य किसीको भी उस नियमकी जरा भी परवाह नहीं थी। दिनके बारह घंटोंमेंसे रतन आधा समय शम्भू पंडितके घरपर ही बिताता ; अलबत्ता पढ़ने-लिखनेमें नहीं। अपनी लम्बी जिन्दगीमें शम्भू पंडितको जितने भी तरहके पशु-पक्षियोंसे परिचय हुआ था, उन सबकी कहानी वे विस्तारके साथ अपने इस बच्चे छात्रको सुनाया करते ; और छात्र रतन खेल-कूद भूलकर बड़े कुतूहलके साथ खूब मन लगाके उन्हें सुना करता। इस तरह, धीरे-धीरे रतनके खेलके साथियोंकी तादाद भी घटती गई ; और अपने 'पंडितजी' को छोड़कर अन्यत्र कहीं

जानेको उसका जी ही नहीं चाहता। नतीजा यह हुआ कि अन्तमें पंडितजीने खुद ही उसके साथ खेलना शुरू कर दिया।

'साठ' और 'छै' इन दो संख्याओंमें जो फरक था, पंडितजीके आचरणसे उसका पता चलना आसान न रहा। कभी तो वे घोड़ा बनकर अपने शिष्यको पीठपर बिठाकर दौड़ते, कभी उसे लकड़ीकी गाड़ीमें बिठाकर उसमें रस्सी बाँधकर कचहरीवाले मकानके आँगनमें, असंख्य कुतूहली दृष्टियोंकी उपेक्षा करके, परम निर्विकार चित्तसे खींचा करते। और इस तरह साल-भर बीत गया।

इस बीचमें शम्भू पंडितने देशको एक चिट्ठी दी थी और उसका जवाब भी आया था। उसमें लिखा था—उनके घरके आँगनमें घास खड़ी हो गई है और पाठशालावाले मकानकी हालत भी ठीक नहीं है ; अगली बरसातमें टिक गया तो बहुत समझो। समाचार पढ़नेके बाद उनमें जरा भी चिन्ताका भाव नहीं दिखाई दिया। वे पहलेकी तरह ही अपने बच्चे विद्यार्थीको पढ़ानेके काममें ही मगन रहे।

रतन ठीक वक्तपर घर नहीं आता, अधिकांश समय उसका पंडितजीके घरपर ही बीतता है, यह बात रतनकी माको बरदाश्त नहीं हुई। दो-एक बार उन्होंने पतिके सामने इस बातका जिक्र भी चलाया ; पर अपनी स्वाभाविक उपेक्षाके कारण पतिने कुछ ध्यान ही नहीं दिया।

और इधर, इस आशंकाने कि लड़का पराया होता जा रहा है, माके मनको क्रमशः अधीर कर डाला। आज उन्होंने पक्का

इरादा कर लिया है कि इस बातका आखिरी फैसला आज कराके ही छोड़ेंगी।

बड़े बाबू खा-पीकर आराम करने अपने खास कमरेमें पहुंचे तो रतनकी माने कहा—"लड़केको तो पंडितजीके ज़ुम्मे छोड़कर निश्चिन्त हो गये! कभी यह भी देखते हो कि वह क्या पढ़ता है, क्या करता है? या, महीने-महीने तनखा दे दी और छुट्टी पा ली?"

"पंडितजी अच्छे आदमी हैं, बराबर मैं नजर रखता हूँ।"

इस विषयमें एक छोटा-सा व्याख्यान देकर कि दुनियामें बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जिनपर मरदोंकी निगाह ही नहीं जाती, गृहिणीने कहा—"अच्छा तो, एक दफे आजमाकर देखो तो सही, आखिर लड़का तो तुम्हारा ही है।"

रतनकी पुकार हुई; और हाजिर होते ही उसकी परीक्षा शुरू हो गई। रतन बहुत ही आसानीके साथ 'पहाड़े' और 'बोधोदय' कंठस्थ सुनाकर उत्तीर्ण हो गया।

बड़े बाबूने हँसते हुए कहा—"देखा!"

पुत्रकी सफलतासे माको खुशी न हुई हो, सो बात नहीं; पर इस वक्त मनकी खुशी जाहिर करना उन्होंने ठीक नहीं समझा; और चुप रह गईं।

रातको फिर बात छेड़ी, पर दूसरे ढंगसे। उनका वक्तव्य यह था कि पड़ोसी श्याम बाबूका लड़का लल्लन रतनसे दो-चार महीने छोटा ही होगा, वह जब अंगरेजीमें बात करता है तो अपना रतन उसके मुँहकी ओर मुँह बाये देखता रहता है।

और फिर आहिस्तेसे बोली—"देखो, जरा अंगरेजी सिखाना जरूरी है। बड़ा होगा तो साहब-अफसरोंसे बातचीत तो उसे करनी ही होगी!"

यह बात बड़े बाबूको जच गई। बात बिलकुल ठीक थी। पास करे या न करे, बड़े आदमीका लड़का ठहरा, अंगरेजी बगैर सीखे कैसे काम चल सकता है!

उन्होंने रतनको बुलाकर पूछा—"क्यों बेटा, तुम अंगरेजी पढ़ते हो न?"

रतनने कहा—"नहीं तो। पंडितजी अंगरेजी नहीं पढ़ाते।"

ठाकुर साहब चुप हो रहे; ठकुरानी बोलीं—"पंडितजी न पढ़ा सकें, तो तुम लल्लाको अंगरेजी पढ़ानेके लिए नया मास्टर ठीक करो। लड़केको मूरख थोड़े ही रखना है।"

रतन चुपचाप खड़ा-खड़ा माकी बात सुनता रहा; और फिर मन-ही-मन अंगरेजी भाषाकी गरदन उड़ाता हुआ चल दिया।

४

दूसरे दिन सवेरे रतनने जब पंडितजीसे रातका किस्सा विस्तारके साथ कहके खतम किया, तब शम्भू पंडितकी आँखोंमें आँसू भर आये। उन्होंने बहुत ही धीमे स्वरमें मन-ही-मन कहा—'सब माया है, माया! आखिर पराया लड़का है।"

रतन कुछ बोला नहीं, चुप रहा।

बहुत देर तक खामोश रहकर शम्भू पंडितने पूछा—"क्यों

रतन, तुमने ठीक सुना है न, मा तुम्हारी नया मास्टर रखना चाहती हैं ?"

"हां, पंडितजी। लेकिन मैं नहीं पढ़ूंगा, मैं नानाके यहाँ चला जाऊंगा।"—रतनने ओठ फुलाते हुए कहा।

पंडितजीने रतनके सिरपर हाथ फेरकर बहुत कोशिश करके कहा—"पढ़ोगे क्यों नहीं बेटा, नहीं तो विद्या कैसे आयेगी ?" और दूसरे ही क्षण फिर पूछ बैठे—"अच्छा रतन, मा और क्या कह रही थीं ? हिन्दी पढ़नेकी जरूरत नहीं ? 'आख्यान-मंजरी' 'साहित्य-सन्दर्भ' ये-सब तो पढ़ना बाकी ही हैं, तुमने कहा क्यों नहीं ?"

रतनने बगैर किसी संकोचके जवाब दिया—"मैंने तो कुछ नहीं कहा।"

"हां तो ऐसा कह, कहता तो अंगरेजी पढ़नेको थोड़े ही कहतीं वे। खैर, मैं समझाके कह दूंगा उनसे।"

शम्भू पंडितकी धारणा थी कि बहू-रानीको जरा-सा समझाकर कह देनेसे ही वे समझ जायेंगी, और इससे उन्हें कुछ सान्त्वना मिली। इसके बाद 'बोधोदय' खोलकर उसमेंसे वे कुछ पूछना ही चाहते थे कि इतनेमें खुद मालिक-साहबकी आवाज उनके कानमें पड़ी—"पंडितजी !" सुनते ही पंडितजी अपनी गैर-जानकारीमें ही रो दिये।

मालिक-साहबने कुरसीपर बैठते हुए मामूली दो-एक बात की ; और फिर कहने लगे—"लल्लाकी पढ़ाई-लिखाई तो वैसे अच्छी ही हुई है ; पर आप जानते ही हैं, आजकल थोड़ी-बहुत

अंगरेजी बगैर पढ़े काम नहीं चल सकता। अभीसे थोड़ा-थोड़ा पढ़ता रहेगा तो आगे चलकर जल्दी सीख जायगा। आपकी क्या राय है ?"

बात घुमा-फिराकर कही जानेपर भी शम्भू पंडित मतलब तो आखिर समझ ही गये ; उन्होंने अपने माथेके पीछे हाथ फेरते हुए कहा—"जी हाँ, आपका कहना तो बिलकुल ठीक है, राजभाषाका सीखना तो जरूरी है ही।"

"तो आप जरा तलाश कीजियेगा, अंगरेजी पढ़ानेवाला कोई मास्टर मिल जाय तो—" कहते-कहते बड़े बाबू रुक गये, फिर बोले—"आपको अंगरेजी नहीं आती क्या ?"

किसी जमानेमें अंगरेजी अक्षरोंसे शम्भू पंडितका थोड़ा-बहुत परिचय हुआ था, पर उसे 'अंगरेजी आना' कहा जा सकता है या नहीं, जल्दीमें वे इस बातका निश्चय न कर सके ; बोले—"जी, हम लोग पुराने जमानेके आदमी ठहरे—"

उनकी बात खतम होनेके पहले ही बड़े बाबू जानेके लिए उठ खड़े हुए ; बोले—"खैर, आप भी तलाश कीजियेगा, और मैं भी देखूंगा।"

ठाकुर साहबके चले जानेपर पंडितजीने रतनको छुट्टी दे दी। रतनने 'बोधोदय' के पन्नोंमें आँखें गड़ाये हुए ही बहुत ही भारी गलेसे पूछा—"अब नहीं पढ़ायेंगे पंडितजी ?"

पंडितजीने बच्चेको छातीके पास खींच लिया, बोले—"पढ़ायेंगे क्यों नहीं बेटा! अभी जाओ, पहाड़े याद करो ; मैं बुला लूंगा फिर।"

रतन पिछवाड़ेके तालाबके घाटके कुरसीनुमा चबूतरेपर बैठकर पहाड़े याद करता रहा; पर पंडितजीने उसे नहीं बुलाया। बैठे-बैठे काफी दिन चढ़ जानेपर वह वहाँसे उठा और पंडितजीके घरके दरवाजेके पास जाकर भीतर झाँकने लगा। देखा कि पंडितजी आँखें मीचे सो रहे हैं। रतन उनकी नींद छुड़ानेके इरादेसे दरवाजेके पास बैठकर पहाड़े याद करने लगा—"ग्यारह एके ग्यारह, ग्यारह दूनी बाईस—"

शम्भू पंडित सोये नहीं थे; बोले—"आ रतन, यहाँ आ।"

रतन भीतर आकर खड़ा हुआ, तो उन्होंने कहा—"मैं जरा तालपुर जा रहा हूँ बेटा, शामके पहले लौट आऊँगा। महाराजसे कह देना, दोपहरको मैं खाऊँगा नहीं।"

इसके बाद उठ बैठे; और कंधेपर चद्दर डालकर तालपुरके लिए रवाना हो गये।

× × ×

पंडितजी जब तालपुरसे लौटे तब शाम हो चुकी थी। बड़े-बाबू बाहर ही बैठे थे; पूछ उठे—"मास्टर कोई मिला पंडितजी?"

पंडितजी बगलें झाँकते हुए बोले—"जी नहीं।" और हाथकी किताब चादरके नीचे छिपाते हुए सीधे अपने कमरेमें घुस गये।

कहनेकी जरूरत नहीं कि पंडितजीने सच बात नहीं बताई थी। तालपुरके माइनर स्कूलके सभी मास्टरोंका जमींदार घरानेके इस लड़केपर लोभ था। शम्भू पंडितने एक मास्टरसे

बातचीत करके तय कर लिया था, पर लौटते वक्त अन्तिम निर्णय बगैर बताये ही वे चले आये थे। रतन दूसरे किसी मास्टरसे पढ़ेगा, इस बातको सोचते ही उन्हें ऐसा लगा जैसे दुनियाके साथ जो उनका आखिरी योगसूत्र बच रहा था वह भी अब टूटना चाहता है।

आधी रात बीत चुकी। पंडितजी तालपुरसे जो अंगरेजीकी 'फर्स्ट बुक' खरीद आये थे, उसे खोलकर अब तक वे उसे पढ़ ही रहे हैं।

रात करीब-करीब खतम होने आई; फिर भी पंडितजीकी अंगरेजी-शिक्षा जरा भी आगे न बढ़ पाई। अक्षर पहचाननेमें बराबर गलती होती रही। बराबर नींदके झोकों और कमजोर याददाश्तसे जूझते रहे बेचारे, पर जीत न सके। अन्तमें जब बहुत ही थक गये और नींदके मारे परेशान हो गये, तो एक गहरी साँस ली और किताब बन्द कर दी। पड़ते ही नींद आ गई और सो गये।

सुबह रतन आकर लौट गया है; नींद उचट जानेके डरसे उसने पंडितजीको पुकारा नहीं। दिनके करीब दस बजे होंगे, अचानक बड़े बाबूके खास मुंशीकी आवाज सुनकर शम्भू पंडित भड़भड़ाकर उठ बैठे; बोले—"ओःफ, काफी दिन चढ़ चुका! कितने, बजे कितने?"

मुंशीजीने कहा—"जी, दस बजे होंगे। बड़े बाबू बहुत देरसे आपकी याद कर रहे हैं।"

"अच्छा, बाबू साहब बुला रहे हैं! जय श्रीगणेशजीकी

जय !"—कहते हुए पंडितजीने जल्दीसे आँखें रगड़कर साफ कीं ; और चल दिये ।

बड़े बाबू कचहरीके बाहरवाले बरादमेमें बैठे थे। उनके सामने बैठा था तालपुरका विनोद मास्टर, जिससे वे बातचीत कर आये थे। उसे देखते ही शम्भू पंडितका चेहरा उतर गया।

बड़े बाबूने पंडितजीसे कहा—"कल आप इन्हींसे बात कर आये थे ? इन्हींसे काम चल जायगा।"

पंडितजीने विनोद मास्टरकी ओर एक बार आँख उठाकर देखा ; उस दृष्टिमें जो ज्वाला थी, सतयुग होता तो शायद विनोद मास्टर उसी वक्त भस्म हो जाता। बड़े बाबूने उस तरफ ध्यान न देते हुए कहा—"रतनके लिए आप अंग्रेजी किताब आज ही ला दीजियेगा !"

पंडितजीने सिर झुकाकर "जो आज्ञा" कहा ; और सीधे अपने घरकी तरफ चल दिये।

शामको शम्भू पंडित अपनी पुरानी कमजोर चौकीपर बैठे दूरसे, कचहरीके बरामदेमें जहाँ रतन अपने नये मास्टरसे अंगरेजी पढ़ रहा था, उस तरफ एकटक देख रहे थे। रतन बार-बार नजर उठाकर पंडितजीके घरकी तरफ देख रहा था ; और पंडितजीकी आँखें आँसुओंसे भरी आ रही थीं। बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहनेके बाद अन्तमें न-जाने क्या सोचकर पंडितजी वहाँसे उठकर चल दिये।

बड़े बाबू बगीचेमें टहल रहे थे। शम्भू पंडितने उनके सामने जाकर हाथ जोड़के कहा—"बाबू साहब, अब मुझे विदा

कीजिये।" वे और भी कुछ कहना चाहते थे, पर सहसा उनका गला भर आया, अच्छी तरह आवाज ही नहीं निकली।

बड़े बाबूने स्वाभाविक तौरसे कहा—"जाना चाहते हैं? कहाँ जायेंगे?"

"जहाँ दो आँखें ले जायँ। अब और जीना ही कितना है? किसी तरह कट ही जायगी जिन्दगी।"

"अच्छी बात है। शामको बात करेंगे।"

शम्भू पंडित चले गये।

रातके करीब दस बजे पंडितजीकी पुकार हुई। उन्हें छोड़ते हुए बहुत दुःख हो रहा है, इस तरहकी कुछ बातें कहकर दस-दस रुपयेके दस नोट पंडितजीके हाथमें देते हुए बड़े बाबूने कहा—"आपके पारिश्रमिकके रूपमें मामूली-सी भेंट दे रहा हूं।"

हाथ पसारकर नोट लेते हुए पंडितजीके हाथ काँप गये। किसी कदर अपनेको सम्हालकर फटी हुई मिरजईकी जेबमें नोट डालकर बड़े बाबूको नमस्कार करते हुए पंडितजीने कहा—"कल तड़के ही रवाना होऊंगा। एक बार रतनको देखना चाहता था?"

बड़े बाबूने कहा—"वो तो सो गया शायद।"

पंडितजी चटसे कह उठे—"सो रहा है? तो रहने दीजिये। दिन-भर इधरसे उधर करता रहता है, थक गया होगा। सोने दीजिये।"

पौ फटनेके पहले ही शम्भू पंडित उठ बैठे; और अपना पुराना बैग कंधेसे लटकाकर चल दिये। रास्तेमें चलते-चलते

एक बार पीछेकी ओर मुड़कर रतनके कमरेकी ओर देखा ; और गहरी साँस लेकर बोले—"झूठी माया है, पराया लड़का ठहरा, मोह करनेसे फायदा ?" और दूसरे ही क्षण तेज रफ्तारसे चलना शुरू कर दिया।

अनिर्दिष्ट सुदीर्घ मार्गपर शम्भू पंडितकी आजसे नई यात्रा शुरू हुई।

× + ×

महीने-भर बादकी बात है ; बड़े बाबूके सामने बैठा हुआ रतन विनोद मास्टरसे सीखी हुई नई विद्याकी परीक्षा दे रहा था ; इतनेमें डाकिया एक पार्सल लेकर हाजिर हुआ।

बड़े बाबूको बड़ा कुतूहल हुआ ; उन्होंने खुद अपने हाथसे पार्सल खोला। उसमें लगभग एक सौ रुपये कीमतकी एक सोनेकी घड़ी थी ; साथ ही एक चिटपर लिखा हुआ था, "बेटा रतनके लिए।" भेजनेवाले हैं—शम्भू पंडित। पता नदारद।

बड़े बाबू बहुत देर तक घड़ीकी ओर एकटक देखते रहे ; फिर उसे रतनके हाथमें देकर चुपचाप बैठे रहे। सहसा उनकी आँखोंके सामने एक तसवीर-सी नाच उठी ;—वृद्ध शम्भू पंडित बाहरके आँगनमें घोड़ा बनकर घुटनोंके बल दौड़ रहे हैं, और रतन उनकी पीठपर सवार होकर कह रहा है, "चल रे घोड़े, जल्दी चल ; लड्डू-पेड़े दूंगा कल।"

माका दुलारा

१

दुलारेलालमें अपने स्वर्गीय पिताका एक गुण पूरी तौरसे मौजूद था। दुलारेका बाप चरणदास बैरागी एक नामी गायक था। गला बहुत ही मिठा और आकर्षक। उसका गाना सुननेके लिए लोग दूर-दूरसे पैदल चलकर आया करते। आज भी उसका बनाया हुआ 'मान-माथुर' जगह-जगह गाया जाता है। अब भी सतगाँव और उसके आस-पास कोई बड़ा उस्ताद आता है तो छोटे-बड़े अमीर-गरीब सभी चरणदासकी चर्चा करते हैं।

दुलारेको वह तीन सालका बच्चा छोड़कर मरा था। उस बातको आज चार साल हो गये। इस बीचमें दुलारेकी मा श्यामा बैरागिनने गोविन्द बैरागीके साथ कण्ठी बदलकर फिरसे नई गृहस्थी शुरू कर दी है। इससे दुलारेको कुछ भी नफा-नुकसान नहीं पहुंचा। वह पहलेकी तरह ही चार दफे दाल-भात खाता है; और दिन-भर घर-घर नाम-कीर्तन और 'मान-माथुर' का एक-आध गीत गाकर अपना फर्ज अदा करता रहता है। गोविन्द ठोंक-पीटकर किसी भी तरह उसे अपनी मिठाईकी दुकानपर बिठाकर उससे कौआ उड़ाने या बैल-बकरी भगानेका काम नहीं ले सका।

इस तरहकी मार पिताकी मौजूदगीमें उसने खाई थी या नहीं, इसकी उसे याद नहीं; पर अब यह रोजमर्राकी चीज बन गई है। दिन-भर इधर-उधर चक्कर काटनेके बाद शामको वह घर आता; और थोड़ा-सा दाल-भात और एक गिलास पानी पीकर माके आँचलसे मुँह पोंछकर सो जाता। दूसरे दिन सोतेसे उठकर फिर सवेरे थोड़ा-सा बासी भात गुड़ और इमलीके साथ पेटमें डालकर बाहर निकल जाता; और दोपहर तक घर-घर अपनी संगीत-कलाका प्रदर्शन और प्रसार करता फिरता।

पर, सहसा एक दिन उसकी इस निश्चत जीवन-यात्रामें बाधा आ पड़ी।

उस दिन शामको घर आकर दुलारेने देखा कि आँगनमें एक चौकीपर भद्रवेशी एक आदमी बैठा है, सामने खड़ी है उसकी मा और गोविन्द। दोनों खड़े-खड़े बड़ी दिलचस्पीसे उसके साथ बातें कर रहे हैं। शरीफ आदमीको देखते ही पालागन करना चाहिए, यह बात दुलारेने अपने बापसे बचपन ही से सीख रखी थी। दुलारेने तुरत उस आदमीके पैरोंके पास सिर झुकाकर पालागन किया और खड़ा हो गया। आगन्तुकने उसके माथेपर हाथ रखते हुए कहा—"वाह, बड़ा शऊरका लड़का है!"

श्यामाके कुछ कहनेके पहले ही भूखे बच्चेने माका आँचल खींचते हुए कहा—"दाल-भात दे मा!"

आगन्तुकने कहा—"जाओ जाओ, पहले इसे खिला-पिला दो, बात तो पीछे भी होती रहेगी। शाम होते ही पेशगी रुपया दे जाऊंगा।"

श्यामा हाथ पकड़कर दुलारेको भीतर ले गई।

आगन्तुक महाशय कलकत्ताकी 'सुरेन्द्र थियेट्रिकल नाटक पार्टी' के मैनेजर हैं। वे यहाँ अपनी सालीके घर घूमने आये थे। कल शामको वहाँ हरि-संकीर्तनमें दुलारेका गाना सुनकर उनका लोभ बढ़ गया। इतनी कम उमरमें ऐसे मीठे कंठसे तान-लय-दुरुस्त गाना उन्होंने पहले कभी नहीं सुना। यही वजह है कि वे अपने लोभको न सम्हाल सके; और पता लगाकर गोविन्दके साथ श्यामाके घर आ पहुंचे। गोविन्दको इसमें कोई आपत्ति नहीं थी। और श्यामा? श्यामा भी बीस रुपये महीने तनखा सुनकर दंग रह गई। फिर भी, यह जानकर कि लड़का उससे बहुत दूर चला जायगा, उसका हृदय वेदनासे भर आया। मगर रुपया! एक महीनेकी तनखा पेशगी उसके हाथ आ रही है; इसके सिवा भविष्यके लिए लड़का एक हिल्लेसे लग जायगा। मनको समझा-बुझाकर श्यामा दुःख भूलनेकी कोशिश करने लगी।

माके मुँहसे दूसरी जगह जानेकी बात सुनकर दुलारेने शंकित दृष्टिसे माकी ओर देखकर जब कहा कि 'मा, मैं नहीं जाऊँगा', तब श्यामाके मनमें फिर वेदना जाग उठी। गोविन्द रसोई-घरके दरवाजेके पास खड़ा था; बोला—"तुम बाहर तो आओ, बाबू क्या कह रहे हैं, सुनो। रुपये लोगी या नहीं?"

एक बीसी रुपया चटसे छोड़ देनेको भी श्यामाका जी नहीं करता। दुलारेकी तरफ बगैर देखे ही वह बाहर चली आई; और-भी कुछ देर बातचीत करनेके बाद रुपये लेकर उसने

आँचलमें बाँध लिये। फिर आगन्तुकके पाँव छूकर बोली—"आप मेरे धरम-बाप हैं! इसके सिवा और मेरे कोई नहीं है। देखियेगा, आपके हाथ ही सौंप रही हूं। अपना धेवता समझकर ही इसे रखियेगा।"

आगन्तुक गोपाल गुप्ताने हँसते हुए कहा—'छै महीने बाद तुम पहचान ही न सकोगी अपने लड़केको, समझीं बैरागिन!"

फिर भी श्यामा बार-बार अपने बच्चेके बारेमें कहती ही गई; कौन-कौन सी चीज खाना वह ज्यादा पसन्द करता है, क्या-क्या उसे अच्छा लगता है, किसमें वह खुश रहता है, इत्यादि।

गोपाल गुप्ताने सब बातें धीरजके साथ सुनकर अन्तमें कहा—"तुम जरा भी फिकर मत करो बैरागिन! दोनों वक्त दाल-भात साग-तरकारी तो है ही, उसके अलावा पूड़ी-मिठाईका भी कोई तोड़ा नहीं। जो मनमें आयेगा, खायेगा। दुर्गा-पूजाके बाद लड़का जब यहाँ आयेगा तो उसीके मँहसे सब सुन लेना!"

श्यामाको तसल्ली मिली; पर दुलारे रात-भर मासे चिपटकर बार-बार यही कहता रहा—"मैं नहीं जाऊँगा मा! मैं नह जाऊँगा।"

गोविन्दने दो बार उसके बाल खींच-खींचकर उसे राजी करनेकी कोशिश की। श्यामाने कहा—"तुम मारो मत, मैं समझाकर राजी कर लूँगी।"

श्यामाने बच्चेको बहुत तरहसे समझाया; वहाँ तरह-तरहकी मिठाई खानेको मिलेगी, बढ़िया-बढ़िया रंग-बिरंगी पोशाक पहना करेगा, कितने खेल-तमाशे देखेगा; कलकत्ता बड़ा-भारी शहर है,

तरह-तरहकी मोटर-गाड़ियाँ चलती हैं, ट्राम, रेल, गंगाजीका पुल, इत्यादि ! पर इतनी लोभकी बातें सुनकर भी दुलारे राजी नहीं हुआ ; बोला—"वहाँ तू जो नहीं रहेगी !" श्यामा आँचलसे आँखें पोंछने लगी। दुलारेने फिर कहा—"तू चलेगी साथ ?"

श्यामासे उसकी बातका जवाब देते न बना ; बोली—"तू पहले पहुंच जा, फिर मुझे चिट्ठी दिला देना, मैं आ जाऊँगी।"

इस बातपर दुलारे राजी हो गया।

दूसरे दिन सवेरे दुलारेकी पूरी-पूरी देख-भाल रखनेके लिए श्यामाने गोपाल बाबूके हाथ पाँव जोड़े, निहोरे किये ; और फिर रोते-रोते बच्चेको विदा किया। कल रातकी बात भूलकर दुलारे अपनी पूरी शक्तिसे माका आँचल मुट्ठीमें दबाये खड़ा रहा। गोविन्दने आकर उसकी मुट्ठी खोल दी ; और खींचकर उसे गाड़ीमें बिठा दिया ; गाड़ीवानसे बोला—"हांको जल्दी।"

गाड़ी चलने लगी। दुलारेने रोते-रोते गाड़ीसे मुँह निकालकर कहा—"कल चिट्ठी छुड़वा दूंगा मा, जल्दी-चली आना !"

गाड़ी थोड़ी दूर जाकर मुड़ी और आँखोंसे ओझल हो गई। क्षण-भरके लिए सिर्फ एक घबराये हुए आर्त कण्ठस्वरने सारे वातावरणको व्यथित कर दिया ; और कुछ नहीं।

२

चीतपुर-रोडपर एक तिमंजिला मकान है। तीसरी मंजिलपर एक कमरेके बाहर साइनबोर्ड टंगा है, उसपर लिखा है— "सुप्रसिद्ध सुरेन्द्र थियेट्रिकल नाटक पार्टी। मालिक, सुरेन्द्रनाथ

शाह। मैनेजर, गोपाललाल गुप्त।" कोठरीके भीतर कईएक फटी चटाइयाँ पड़ी हैं; उनपर फटे हुए मैले कुचैले तकिये पड़े हैं, सबकी खोली नदारद। इधर-उधर बहुत-सी किताबें पड़ी हैं। ज्यादातर नाटक हैं, दो-चार गानोंकी किताब हैं और चार-छै सचित्र उपन्यास। एक कोनेमें कईएक टीनके बक्स हैं, उनपर तरह-तरहके लेबिल चिपके हुए हैं। बक्सोंके ऊपर रखे हैं तबले वगैरह बाजे। दीवारोंपर नग्न नारियोंके दो-एक विलायती चित्र हैं; और एक आलेमें है गणेशजीकी मिट्टीकी मूर्ति, जिसपर काफी सिन्दूर लगा हुआ है। मूर्तिके पास ही गाँजेकी चिलम रखी है, जिसपर मैला लत्ता लिपटा हुआ है। दीवारके नीचेके हिस्सेमें और कमरेके हर कोनेमें पानकी पीककी भरमार है।

करीब ग्यारह बजे होंगे। चटाइयोंपर बैठे हुए कुछ अभिनेता आईनेके सामने विचित्र मुँह बना-बनाकर अपनी-अपनी मुखाकृतिका गौरसे अध्ययन कर रहे हैं।

कमरेके एक कोनेमें फटा हुआ तकिया छातीसे लगाये और हुक्केकी नली मुंहमें दिये कम्पनीके मालिक साहब खाता-बही देख रहे हैं।

इतनेमें दुलारेको साथ लिये हुए मैनेजर साहब कमरेमें दाखिल हुए; और मालिक साहबको सम्बोधित करते हुए बोले—"देखिये, ले आया। इसे ठीकसे तैयार कर लिया गया तो भरद्वाजोंका 'सीता-निर्वासन' झख मारता रह जायगा।"

मालिक साहब हुक्केकी नली छोड़कर उठ बैठे; बोले—"यह तो बिलकुल बच्चा है। कर सकेगा?"

"देख लीजिये, हाथ कंगनको आरसी क्या ?"

"अच्छी बात है, गाओ तो बेटा !"

दुलारेको जोरकी भूख लग रही थी। उसने कहा—"भूख लगी है।"

मैनेजर साहबने नौकर बुलाकर उसे दो पैसेके चने-मुरमुरे लानेका हुक्म दिया; और कहा—"खाना आ रहा है, तब तक तुम एक गा दो!"

दुलारे जमीनपर बैठ गया; और अपने नन्हे-नन्हे हाथ हिला-हिलाकर उसने कीर्तन गाना शुरू कर दिया। रोजकी तरह आजके गानेमें उसका मन तल्लीन नहीं हुआ, फिर भी कम्पनीके मालिक और उपस्थित अभिनेतागण मुग्ध हो गये।

मालिकने कहा—"चल जायगा। अच्छा ही चलेगा। पर टिक जाय तब है!" उसके बाद दुलारेके घरका हाल सुनकर बोले—"नहीं, भागने-भूगनेका डर नहीं है। आज ही से तालीम दीजिये इसे। लव-कुशके सीनमें गाने हैं, उसके साथ दो-एक चण्डीदासके पद जोड़ दीजिये, बहुत अच्छा रहेगा!"

दुलारेकी शिक्षाका इन्तजाम हो गया।

२

शामको दुलारेने बंगलेमेंसे बाहरकी दुनिया देख ली। यही है कलकत्ता शहर! आदमियोंकी भीड़, ट्राम, मोटर! फिर भी दुलारेको यहाँ कतई अच्छा नहीं लगता। अपने गाँवके

साथियोंकी याद आने लगी उसे। साथ ही, अपने यहाँके हरे-भरे खेत, बाग, बबूलके पेड़, नीमके पेड़के नीचेका अपना छोटा-सा घर और उसके सामनेवाली सुनारकी दुकान, जिसके चबूतरेपर बैठा बंसी बाँसुरी बजाया करता है, कैसा मीठा सुर होता है उसका! एक-एक करके सभी बातें याद आने लगीं। मन उसका उदास हो उठा।

फिर माकी याद आने लगी। मा अब क्या करती होगी? मनमें इस प्रश्नके उठते ही उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। उन आँसुओंमें बाहरकी दुनिया न-जाने कहाँ बह गई; और सामने जो धुँधला-सा दिखाई दिया उसमें उसकी माकी मूर्ति ही इधरसे उधर फिरने लगी। जंगलेके सींखचोंसे गाल सटाकर वह अस्पष्ट स्वरमें पुकारने लगा—"मा, मा, ओ री मा!"

कितनी देर तक रोता रहा, उसे कुछ भी खबर नहीं। यकायक वह उठा और मैनेजर साहबके पास जाकर बोला—"मैं यहाँ नहीं रहूंगा, माके पास जाऊँगा।"

मैनेजर साहब उस वक्त दो पैसेकी 'बैंगनी' के साथ शामकी चाय पी रहे थे; दुलारेकी बात सुनकर मुँह बिगाड़ते हुए बोले—"लल्लाका दुलार तो देखो! नहीं रहूंगा! जा, ऊपर जा, अभी मास्टर आता होगा।"

मैनेजरके इस जवाबसे उसका कलेजा बैठ गया; अपना-सा मुँह लिये चुपचाप ऊपर चला गया।

मास्टर आया। उसने कई तरहसे दुलारेकी परीक्षा करके मालिकसे कहा—"लड़का तो बहुत ही अच्छा हाथ लग गया है;

टिका रहा तो अगली पूजाके मौसममें 'नरमेध-यज्ञ' ऐसा डटके जमेगा कि जिसका नाम !"

दुलारेकी शिक्षा बाकायदा चलने लगी। साथ ही दोनों वक्त उसके जलपानके लिए चार पैसेका बजट भी पास हो गया। मैनेजरने दुलारेको सड़कपर जानेकी खास तौरसे मनाही कर दी। 'सुरेन्द्र थियेट्रिकल नाटक पार्टी' की खास प्रतिद्वन्द्वी 'नन्दा नाटक कम्पनी' चौराहेके पासवाले मकानमें है; उस पार्टीके लोग अकसर इस फिराकमें घूमा-फिरा करते हैं कि कुछ रिपोर्ट मिले और अपने मालिकको दें। इस 'रत्न' का पता लगते ही वे इसे उड़ा ले जायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। पिछले साल उन लोगोंने एक लड़केको ऐसा फोड़ा कि इन लोगोंका नया पञ्चाङ्की नाटक 'समुद्र-मन्थन' चौपट ही हो गया।

मैनेजर साहब सिर्फ दुलारेको ही बाहर जानेकी मनाही करके निश्चिन्त न हो सके; उन्होंने दरबान, नौकर और अभिनेताओं तकको उसपर कड़ी निगरानी रखनेके लिए कह दिया है। इस तरह ईंट-काठके घेरेमें बहुत-सी निगाहोंकी जंजीरमें बँधा गाँवका और माका दुलारा बच्चा कैदी बनकर रहने लगा। उसका मन दिन-रात अपने गाँवके लिए तरसा करता है। दस बजे रोटी खाने बैठता तो पहला गस्सा मुंहमें देते ही उसकी आँखोंमें आँसू भर आते। जिस दिन बहुत ज्यादा माकी याद आती उस दिन फिर उसके गलेसे अन्न ही न उतरता।

इस बीचमें मैनेजर साहबकी खुशामद करके दुलारेने माको एक पोस्टकार्ड भिजवाया था। मैनेजरने सादा कार्डपर लिखकर

बगैर टिकट लगाये उसे डाकमें डलवा दिया था। दुलारेको इस बातका निश्चय था कि चिट्ठी पाते ही मा फौरन कलकत्ता चली आयेगी। इसी भरोसेपर वह चिट्ठी डलवानेके बादसे बिना विरोधके बराबर अपना कर्तव्य पालन करने लगा। उस दिनसे उसकी निगाह दरवाजेपर रहती ; जीनेमें किसीके आनेकी आहट सुनता तो उसे लगता कि मा आ गई ! वह जीने तक जाता और दूसरे ही क्षण अपना-सा मुँह लिये वापस आ जाता।

इस तरह डेढ़ महीना बीत गया। रोज ही उसकी सवेरेकी आशा शामको शून्यमें विलीन हो जाती। फिर भी वह माके आनेके विषयमें निराश न हो सका। और इस आशा-निराशाके बीच ही उसकी शिक्षा समाप्त हुई।

४

पूजाका मौसिम आया। सुरेन्द्र-थियेट्रिकल-पार्टीके नये नाटक 'सीता-वनवास' का विज्ञापन बड़े-बड़े रंग-बिरंगे हरूफोंमें चारों ओर जोरोंसे प्रचारित किया गया। कम्पनी-बागके पास ही पंचायती दुर्गा-पूजाका मंडप था। उसके सामने जो थोड़ा-सा खुला हुआ मैदान पड़ा था, उसमें थियेटर-कम्पनीने अपना नाटक दिखाना तय किया।

जिस दिन नाटक शुरू होनेवाला था, उस दिन सवेरे ही दुलारे रोता हुआ मैनेजरके पास पहुंचा ; बोला—"मैं माके पास जाऊँगा।"

उसकी बात सुनकर मैनेजर बुरी तरह मुंह बिगाड़कर

चिल्ला उठा—"वाह रे छोकड़े! आज खेल होगा, और तू जायगा माके पास! नौकरी है या दिल्लगी समझ रक्खी है!"

दुलारे समझ गया कि उसका जाना नहीं हो सकता। आँखें मीड़ता हुआ वह चुपचाप वहाँसे चला आया।

रातको खेल शुरू हुआ। मालिकने देखा कि मैनेजरने गलत नहीं कहा। कुशके अभिनयमें दुलारेने जिस दक्षताका परिचय दिया वह अपूर्व थी। उन लोगोंकी कम्पनीके इतिहासमें ऐसा सुन्दर अभिनय कभी नहीं हुआ। दर्शकगण मुग्ध हो गये थे; और हर बार दुलारेके आगमनपर तालियाँ बजा-बजाकर उसे उत्साहित कर रहे थे। उसके अभिनयकी चरम दक्षता प्रकट हुई अन्तिम दृश्यमें, जहाँ रामायण-गानके अन्तमें सीता आईं और कुश-वेशधारी दुलारे—"अरे, मा आ गई!"—कहकर सीताकी छातीसे चिपट गया। दर्शकोंका गला भर आया, आँखोंसे झर-झर आँसू झरने लगे। दुलारे सिसकियाँ भर-भरके रोने लगा, और रुँधे हुए कण्ठसे दुखिया-दुखियाकर बोला—"मा, मा, अरी मा री!"

उसके इस रोनेसे दर्शकगण कुछ क्षणोंके लिए नाटक भूलकर मानो सुदूर अतीत-लोकमें पहुंच गये। मालिकसे लेकर बेहला बजानेवाले तक सब अन्तिम दृश्यका अभिनय देखकर दंग रह गये। अपनी जिन्दगीमें उन लोगोंने ऐसा सजीव अभिनय कभी नहीं देखा।

नाटक खतम हुआ। चिकके भीतरसे किसी महिलाने कुशके लिए एक कीमती दुशाला भिजवाया। पुरुषोंमें से भी

दो-चार चीजें भेंटमें आने लगीं। तब दुलारेकी पुकार हुई, पर वह कहीं भी ढूंढ़े नहीं मिला।

अभिनय खतम करके दुलारे सीधा 'साज-घर' में पहुंचा और नाटककी पोशाक उतारकर सबकी आँख बचाकर सड़कपर निकल गया। उसका सम्पूर्ण अन्तःकरण माके पास पहुंचनेके लिए व्याकुल हो उठा था। दर्शकोंकी इतनी तारीफ, मालिक और मास्टरकी इतनी खुशी, दुनियाकी इतनी वाहवाही सब-कुछ उसके लिए तुच्छ और उसके भीतरकी वेदनाकी प्रतिध्वनि-सी ही साबित हुई।

राहगीरोंसे पूछता हुआ वह सीधा स्टेशन जा पहुंचा। लेकिन पैसे जो चाहिए टिकटके लिए? पैसे कहाँ हैं उसके पास? बिना टिकटके रेलमें चढ़ने कौन देगा? क्या उपाय?

प्लाटफार्मके बाहर बहुत देर तक इधर-उधर चक्कर काटकर जब थक गया, तो एक बेञ्चपर बैठ गया बेचारा। थोड़ी देरमें आँखें मिच आईं; और सो गया।

माका दुलारा सुनसान स्टेशनकी बेञ्चपर पड़ा-पड़ा सपना देख रहा था—वह माके पास पहुंच गया है। माकी छातीसे सिर लगाकर कह रहा है, "अब मैं नहीं जाऊंगा, मा, अब मैं नहीं जाऊंगा।" मा उसे छातीसे लगाकर कह रही है, "नहीं बेटा, नहीं, अब तुझे मैं कहीं भी नहीं जाने दूंगी।" इतनेमें अचानक माथेपर चोट-सी लगी; और उसकी आँख खुल गई। देखा कि सामने मैनेजर और भोला नौकर खड़ा है। तलाश करते-करते वे स्टेशन तक आ पहुंचे हैं। मैनेजरको देखते ही

दुलारेका चेहरा सफेद-फक पड़ गया। वह रो उठा; बोला—"मैं माके पास जाऊंगा।"

मैनेजरने आँखें तरेरकर कान पकड़के दुलारेको बेञ्चसे उतार लिया; और कड़ककर कहा—"बदमाश! दौड़ते-दौड़ते मेरे पाँव पथरा गये! ठहर, तुझे भेजता हूं मैं माके पास! चल पहले, बताता हूं फिर!"—कहते हुए घसीटकर मैनेजरने उसे घोड़ा-गाड़ीमें धर पटका; और कोचवानसे कहा—"चलो चीतपुर रोड।"

थियेटर पार्टीमें जो भी आता है, दस-पाँच पन्द्रह दिनमें वह उसमें रम ही जाता है; पर यह लड़का, बड़ा जिद्दी, बड़ा ही ढीठ निकला! मालिक साहब मारे गुस्सेके तमतमा उठे थे। इतनेमें मैनेजर आ पहुंचे; और फरार असामीकी तरह दुलारेको उन्होंने मालिकके सामने पेश किया। दुलारेको देखते ही मालिक साहबने पाँवसे चट्टी खोलकर उसे मारना शुरू कर दिया। दुलारेने चूं तक नहीं की; चुपचाप पीठ झुकाकर मार सहने लगा। पूरी मार खा चुकनेके बाद जब उसे छुट्टी मिली तो फटी चटाईपर औंधा पड़ रहा; और सिसक-सिसककर रोते-रोते अन्तमें सो गया।

बिना कुछ खाये-पीये वह भूखा ही सो गया था। किसीने उससे खानेके लिए पूछा भी नहीं। जब उसकी आँख खुली तो उसे ऐसा लगा जैसे उसका माथा कोई भीतर-ही-भीतर आरीसे चीर रहा हो। आँखें लाल-सुर्ख थीं, बदन तत्ता तवा हो रहा था। जोरका बुखार है। उसमें इतनी भी ताकत नहीं

कि हिल भी सके। बड़े जोरकी प्यास लगी थी ; पानीके लिए वह उठा, जीनेसे नीचे उतरनेकी कोशिश करते ही धड़ामसे गिरा और नीचे लुढ़क पड़ा। उसका रोना सुनकर मैनेजर और कई अभिनेता आ पहुँचे। सबने उठाकर उसे ऊपर लाकर सुला दिया। रातको बीस ग्रेन कुनैन खिलाकर मैनेजर उसका बुखार न उतार सका। रातके लगभग चार बजे होंगे ; दुलारेने गाना शुरू कर दिया—

"मा मा, मा मा, आ तो गई मा !
आखिर तुझसे रहा गया ना।
गोदीका . धन, गोदी ले ले,
अपने कुशकी मिट्टी ले ले,
मा, मा, मा, मा, आ तो गई मा !"

मुहल्लेमें एक दवाख़ाना था, उसके कम्पाउण्डरने आकर देखा ; और कहा—"बाय आ गई है !"

शामको गाना थम गया ; साथ-साथ नाड़ी भी थम गई।

× × ×

दुर्गा-पूजाके समय गाँवसे तीन कोसकी दूरीपर एक जगह दुलारेकी थियेटर-कम्पनीका नाटक होनेवाला था। श्यामाने सोचा कि उस मौकेपर उसका दुलारा भी आयेगा; और तब वह उसे अपने साथ ले आयेगी। श्यामा अपने लड़केके लिए नये चिउड़ोंकी मिठाई बनानेके इरादेसे पड़ोसिनके साथ बैठी ओखलीमें धान कूट रही थी। इतनेमें डाकिया आया ; और बोला—"श्यामा, तुम्हारा मनी-आर्डर है।"

सुरेन्द्र-थियेट्रिकल-पार्टीका मनी-आर्डर था; उसमें दुलारेकी तनखाके, कमीशन काटकर, नौ रुपये चौदह आने भेजे गये थे। नीचेकी कूपनपर लिखा था—"तारीख २७ सितम्बरके दिन दुलारेलालकी मृत्यु हो गई, निमोनिया हुआ था।"

श्यामाने रुपये उठाकर फेंक दिये; और सिरसे कुटना मारकर फूट-फूटकर रोने लगी—"हाय रे मेरा दुलरुआ, अरे दुलरुआ रे!"

डाकिया चला गया।

गौरी

१

गौरीको मैं बचपनसे जानता था। अपने गाँवमें, छुट्टीके दिन, शामको नदीके किनारे जब मैं घने पड़ोंकी छायाके नीचे अँधेरेमें काँटा डाले मछली फँसानेकी ताकमें बैठा रहता, तब वह घाटपर आती और दीआ बहाकर चली जाती। गोल-मटोल साँवला चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, पतली नुकुली नाक और उसमें छोटी-सी बुलाक; नन्दू मल्लाहकी आठ सालकी लड़की, नाम गौरी। हर शामको वह नदीके बहावमें अपने भावी भाग्यका प्रदीप बहाकर, मिट्टीकी छोटी-सी गागर भरकर, मृदुस्वरमें "बन्दूं माता, सबकी त्राता" गाती हुई घर लौट जाती। गौरीके बचपनका बस इतना ही वैचित्र्यहीन इतिहास मुझे मालूम था।

इसके बाद जैसा सुना है वैसा ही लिख रहा हूं। दस सालकी उमरमें गौरीका ब्याह हुआ ; और उसी साल उसका बाप नन्दू और पति सदानन्द पद्मा-नदीमें मछली पकड़ने गये सो गये ही, फिर लौटे नहीं। माके साथ-साथ गौरी भी रोई। उसके बाद, मा-बेटी दोनों मिलकर मेहनत-मजूरी करके किसी तरह अपनी गुजर करने लगीं।

२

चार-पाँच साल बाद, एक दिन गाँवके पुराने जमींदारोंके घर गौरीकी मा आँगनमें पछाड़ खाकर गिर पड़ी ; और रोते-रोते कहने लगी : आज महीना-भर हो गया, रातको उसे नींद आती, रात-भर उसके घरके चारों तरफ किसीके चलने-फिरनेकी आहट सुनाई देती है, डरके मारे उसका जी सूख जाता है। तीन-पीढ़ी पहले जोरावर सिंहके बाबा ही गाँवके जमींदार थे। जमींदारी अब सात बीघा जमीनमें आकर सीमाबद्ध हो गई है। गढ़ी और ड्योढ़ी अब भी है, पर ड्योढ़ीवान नहीं। लोगोंकी फरियाद अब भी सुननी पड़ती है। कुछ दिन पहले तक न्याय-विचार करके जुरमाना और नजरानाके तौरपर कुछ-कुछ प्राप्ति हो जाया करती थी ; पर जबसे फजल मियाँ मदनपुर-यूनियनके प्रेसिडेण्ट हुए हैं तबसे वह रास्ता भी बन्द हो गया है। यही वजह है कि ठाकुर साहब अब न्याय न करके सिर्फ सलाह ही दिया करते हैं। गौरीकी माको उन्होंने सलाह दी कि वह अपनी सब बात दारोगासे जाकर कहे, और उन्हींसे न्याय करावे ; साथ

ही यह भी भरोसा दिया कि वे भी अपनी तरफसे दारोगाको सब समझा देंगे।

इससे गौरीकी माका सवाल हल होना तो दूर रहा, वह और-भी ज्यादा चक्करमें पड़ गई। दरोगाजी हाकिम ठहरे, उनके सामने वह जाय कैसे? और पहुंच भी जाय तो जबान कैसे खोले?

बहुत सोच-विचारके बाद, एक दिन वह नजरके लिए महीन धानके थोड़े-से चिउड़ा लेकर गाँवके चौकीदार शेख नजीरके घर पहुंची; और उससे अपना सब हाल कह सुनाया। भेंटसे खुश होकर शेखने रातको नन्दू मल्लाहके घरके आस-पास गश्त लगाना शुरू कर दिया; पर इससे भी गौरीकी माका सवाल हल न हुआ। आखिरकार गौरीकी माने बिना मजूरीके धान कूटकर और अपने छप्परका कुम्हड़ा भेंट करके शेखको एक दिन दरोगाजीके पास ले जानेके लिए राजी कर लिया।

मौका भी खूब लगा। पासके गाँवमें दारोगा साहब किसी मामलेकी तहकीकात करने आये थे। नजीर शेखको आगे रखकर अपनी काली-गायका एक लोटा दूध हाथमें लिये बुढ़िया दारोगा साहबके सामने हाजिर हुई।

दारोगा साहब तुरत-बने बाँसके माचेपर बैठे थे; और उनके सामने असामी और फरियादियोंकी तरफके बहुत-से गवाह हाथ-जोड़े खड़े थे। माचेके एक बगल दो मुरगियाँ बंधी थीं और पीछेकी ओर एक बकरा। दारोगा साहब गम्भीर चेहरा बनाये गवाहियाँ लिख रहे थे। बकरा और मुरगियोंके

साथ अपने एक-लोटा दूधकी तुलना करके बुढ़िया मन-ही-मन बहुत ही शरमिन्दा हुई; पर दूसरे ही क्षण शेख नजीरका इशारा पाकर वह दारोगा साहबके पैरोंपर पड़ गई और रो-रोकर अपना दुखड़ा कहने लगी।

दारोगा साहबने पूरी बात बगैर सुने ही पूछा—"लड़कीकी उमर कितनी है?"

"सोलह साल, हजूर!"

"अभी तुम घर जाओ। सरे-जमीन तहकीकात करूँगा। हाँ, असामी नम्बर दोका गवाह बेचू!"

बेचूने सामने आकर सलाम किया और खड़ा हो गया। नजीरने गौरीकी माको एक तरफ ले जाकर कानमें कहा—"शामके वक्त घर ही में रहना बुढ़िया, दारोगा साहब तुम्हारे घर जायेंगे।"

गौरीकी मा अथाहमें थाह पाकर मनसा-माताके नाम पाँच पैसेके बतासे चढ़ानेकी मन्नत मानकर घर लौटी। माके मुंहसे सब बात सुनकर मारे खुशीके गौरी रो दी; और मिट्टीकी दीवारपर टँगी सत्यनारायणकी तसवीरके सामने जाकर ढोक देकर बोली—"लाज-रखैया हे भगवान, मेरी लाज रखना।"

३

शामका वक्त है। तुलसीजीके चबूतरेपर दीआ रखकर बार-बार जमीनसे माथा लगा-लगाकर गौरी शायद कोई प्रार्थना कर रही थी; इतनेमें आँगनमें दारोगा साहब आ खड़े हुए।

जूतेकी आहट सुनकर गौरीने मुंह फेरकर दारोगाको देखा ; और देखते ही उसी क्षण वहाँसे वह गायब हो गई। गौरीकी मा रसोई-घरमें थी ; उसने जल्दीसे आकर आँगनमें चटाई बिछा दी। दारोगा साहब चटाईपर बैठ गये ; और सारा किस्सा सुनकर उन्होंने गौरीको बुलवाया। छोटी-सी धोतीको चारों तरफसे सम्हालती हुई गौरी डरते-डरते दारोगाके सामने आई ; और अत्यन्त संकुचित होकर खड़ी हो गई। दोनों आँखोंकी सारी ताकतको इकट्ठी करके शामके उस झुटपुटे अँधेरेमें भी दारोगाने गौरीको अच्छी तरह देख लिया। लड़की देखनेमें बुरी नहीं है। गौरीके मनकी गति किस तरफ है इस बातको समझनेके लिए दारोगाने जो दो-एक-बात पूछी, तो मारे शरमके गौरी गड़-गड़ गई ; और तुरत वहाँसे भाग खड़ी हुई। उसकी माने भीतर जाकर बहुत कोशिश की कि वह दारोगा साहबके सामने जाकर उनकी बातका जवाब दे, पर वह किसी कदर टससे मस हुई ही नहीं।

आखिर जब देखा कि गौरी आयेगी ही नहीं, तब दारोगा साहब उठ खड़े हुए ; और जाते वक्त मुसकुराते हुए वादा कर गये कि वे बीच-बीचमें आकर देख-भाल करते रहेंगे।

दारोगाके चले जानेपर नजीर चौकीदारने आँगनमें आकर गौरीकी मासे कहा—"जी गई बुढ़िया तू, खुद हाकिम सा'ब तेरी मदद करेंगे !"

बुढ़ियाने निश्चिन्त होकर भगवानको नमस्कार किया। पर गौरी उस दिन बिस्तरसे उठी ही नहीं।

४

इसके बाद, कुछ दिन तक दारोगा साहब इधर-उधर तहकीकातमें जाते-आते वक्त बीचमें गौरीके घर आते और खबर-सुध ले जाते। पर उनकी खबर-सुधकी खास चीज घोड़ेकी टापकी आवाज सुनते ही घरके पिछवाड़ेसे ऐसी गायब हो जाती कि उसकी मा भी उसका पता न लगा सकती। लड़कीकी इस अकृतज्ञतासे बुढ़िया मा बहुत ही शरमिन्दा होती और उसकी तरफसे हर बार हाकिमसे माफी माँगकर भगवानसे उसके लिए आशीर्वाद माँगती। पर बुढ़ियाकी इस तरहकी नीरस बातोंसे दारोगा साहबकी तबीयत नहीं बहलती, और इसलिए उन्होंने इधर आना ही बन्द कर दिया।

इससे गौरीकी हालतमें कोई फरक नहीं पड़ा; उसकी जीवन-धारा जैसी बह रही थी वैसी ही बहती रही। दिन-भर काम-काजमें अपनी हालतका कोई खास खयाल नहीं रहता, पर सूरज डूबते ही दुनिया-भरकी चिन्ता और डर मनमें आकर घर कर लेता; और तब दुनिया एक प्रेतपुरी-सी लगती।

अचानक एक दिन गौरीकी सारी दुश्चिन्ता जाती रही।

उस दिन वर्षा सवेरेसे ही शुरू हो गई थी। सावनकी अँधेरी रात थी। पहले पहरमें ही गाँवकी छातीपर निशीथका सन्नाटा छा गया था। उस सन्नाटेमें गौरीकी माने अपने घरके आँगनमें सहसा एक मर्मभेदी चीख सुनी। सावनकी मूसलधार वर्षाकी आवाजको दबाकर उस आर्तनादने सुखसे सोये हुए

रारीफोंके मुहल्ले . . . गाँवकी नींदका आलस छूटनेके पहले ही वह वर्षाकी भरी नदीके तरंग-कल्लोलोंमें डूब गया।

गाँवमें एक बार उथल-पुथल न मच गई हो, सो बात नहीं। नदीके उस पार झाऊ वनके किनारेसे जब गौरीको लेकर नाव अदृश्य हो गई, तब गाँवके चौकीदार शेख नजीरका सिंह-गर्जन सुनाई दिया। उधर गणेश माझीके मुँहसे समाचार सुनकर हरिहर शर्माने ठाकुर साहबको जगाया; और कहा—"जो सोचा था ठाकुर साहब, वही हुआ, नन्दू माझीकी लड़कीको उड़ा ले गये लोग!"

ठाकुर साहब आँखें मीड़ते और राम-नाम जपते हुए बैठक में पहुंचे। देखते-देखते गाँवके शरीफ लोगोंसे बैठक भर गई। दरबार लगा। माखनलाल महरोत्राकी उमर कम है, शौकिया थियेटरमें लगातार लक्ष्मणका अभिनय करते-करते संकटमें पड़ी स्त्रियोंके प्रति उसके एक तरहकी ममता-सी हो गई थी; सभाके लोगोंमेंसे एकने जब थानेमें समाचार देनेका प्रस्ताव किया, तो वह बोल उठा—"थानेमें खबर देनेसे कोई फायदा नहीं, मैं चलता हूं, आइये आप लोग!"

हरिहर शर्माने उसे डाटते हुए कहा—"बस, और तो सब हो चुका, नाटकमें चतुरी चमारके पाँवों पड़कर तुम्हारा 'भ्राता' 'भ्राता' कहना तो लोगोंने किसी तरह बरदाश्त कर-करा लिया है, पर अब नीच-कमीनोंके हाथ मार खाकर हमारी रही-ठही आबरूकी क्यों धूल उड़वाते हो?"

'नाच- [illegible] । जब माखन-लालका उत्साह चट [illegible] गया तब [illegible] नेमें खबर देनेके सिवा और-कोई अच्छा रास्ता लोगोंको सुझाई ही नहीं दिया।

गौरीके चरित्रके बारेमें सच-झूठ मिलाकर सब तरहकी आलोचना जब धीरे-धीरे थमकर बैठ गई, तब एक दिन अचानक समाचार आया कि बशीरपुरके अमीर शेखके घर गौरीका पता लग गया। गांव फिर चंचल हो उठा; और, हालाँ कि पैंठका दिन था, फिर भी मदनपुर-युनियनके प्रेसिडेण्ट चमड़ेके दलाल फजल मियाँके बाहरवाले दालानमें कुतूहली दर्शकोंकी काफी भीड़ जम गई।

शामका वक्त था। सावनकी मूसलधार वर्षा अभी-अभी बन्द हुई है। पश्चिमका आकाश सूरजकी आखिरी रोशनीसे लाल-सा दिखाई दे रहा है। दो चौकीदारोंके कँधेपर हाथ रखे लड़खड़ाती हुई गौरी किसी कदर पंचोंके सामने आकर खड़ी हुई। व्यर्थ बहाये हुए आँसुओंके निशान उसके गालोंपर अब तक सूखे नहीं थे, बिना नींदकी निस्तेज लाल आँखें उसकी संध्याकाशकी लाल आभासे अब भी जलती हुई नजर आ रही थीं; पर पहलेकी तरह आज उसके मुँहपर घूँघट नहीं था। इतनेमें भीड़को चीरती और पागलोंकी-सी चिल्लाती हुई बुढ़िया माने आकर गौरीको छातीसे चिपटा लिया; और विह्वल होकर बार-बार पूछने लगी—"हाय हाय, तेरी ऐसी दसा किसने की बिटिया! हाय हाय!"

गौरीने उद्भ्रान्त-दृष्टिसे क्षण-भरके लिए माके मुंहकी ओर

देखा; और ऊपरकी ओर उँगली उठाकर रह गई; मुँहसे कुछ न बोली।

फजल मियाँके हुक्मसे शेख अमीर उनके सामने पेश किया गया।

फजल मियाँ अपने पाँवसे जूता खोलनेके लिए झुके ही थे कि शेख अमीर हाथ जोड़कर कह उठा—'हुजूर, वो मेरी निकाहकी बीबी है।"

सहसा इस बातको सुनकर गौरी काँप उठी; और अपनी निर्जीव देहका सारा भार फजल मियाँके पाँव-तले पटककर अस्फुट स्वरमें क्या बोली, किसीके कुछ समझमें न आया। उसके माथेपर हाथ रखकर और संक्षेपमें तसल्लीकी एक बात कहकर फजल मियाँने शेख अमीरको थाना ले जानेके लिए हुक्म दिया। थाना यहाँसे काफी दूर था; लिहाजा उस रातको गौरीको फजल मियाँके सुपुर्द रखकर ग्राम-पंचायतके सदस्य अपने-अपने घर चले गये।

उसी दिन आधी रातको, फजल मियाँके बूढ़े सहीसने ड्योढ़ीकी बगलवाली कोठरीमें खाटपर पड़े-पड़े सुना कि ऊपर उसके मालिकके बाहरवाले कमरेमें कोई औरत विनतीके स्वरमें कह रही है, "आपके पैरों पड़ती हूं हुजूर, आप मेरे धरम बाप हैं।" इतना कहना था कि यकायक बादल गरज उठे और जोरकी वर्षा होने लगी; फिर कुछ सुनाई नहीं दिया।

दूसरे रोज दोपहरको थानेमें दारोगाके सामने मामला पेश हुआ। मामला ऐसा था कि जिसपर भारतीय दण्ड-विधिकी कई

धारा-उपधाराएँ लागू होती थीं; लिहाजा दारोगा साहबने यही तय पाया कि मामला संगीन है और इसकी असलियत मालूम करनेके लिए असामीके बयान लेना जरूरी है। फैसला हुआ कि गौरीको कल तक थानेमें ही रखा जायगा। गौरी रात-भर थानेमें ही रही।

दूसरे दिन सवेरे जब वह चौकीदारके साथ बैलगाड़ीमें जाकर बैठी, तब थानेके बरामदेमें कुरसीपर बैठे हुए दारोगा साहब और उनके सामने हथकड़ी पहने खड़ा हुआ शेख अमीर इन दोनोंमें उसे कोई भी फरक नहीं दिखाई दिया।

५

कचहरीमें अंगरेज-डाक्टर, लेडी-डाक्टर, पुलिसके बड़े साहब, वकील मुख्तार ये सब मिलकर कई दिनों तक गौरीसे बहुत सी बातें पूछते रहे; और गौरी आँखोंके सामने दीखनेवाले सब-कुछको सपना समझकर हर बातका जवाब देती गई। उसे इस बातका कुछ भी होश नहीं कि वह क्या-क्या कह गई। भरे इजलासमें खड़े होकर असामी शेख अमीरसे लेकर बाकीके छहों अत्याचारियोंको उँगलीसे दिखा-दिखाकर वह स्पष्ट भाषामें अपनी कलंक-कहानी कहती चली गई; किसीके रोके रुकी ही नहीं।

गाँवसे जो दो-चार शरीफ-घरानेके प्रतिष्ठित सज्जन गौरीकी माके साथ मामलेकी पैरवी करने आये थे, वे नन्दू माझीकी लड़कीकी इस निर्लज्जताको देखकर दंग रह गये।

यथासमय मामलेका फैसला हो गया। अदालत उठ जानेके बाद गौरीकी मा और उसके गाँववाले बैलगाड़ीमें बैठकर जा रहे थे, इतनेमें गौरी दौड़ी आई और चलती गाड़ीका पहिया पकड़कर रोती हुई बोली—"मुझे भी लेती जा मा, अकेली मैं कहाँ रहूंगी!"

इसके उत्तरमें गाड़ीके भीतरसे कोई फूट-फूटकर रोने लगी। उसे डाटते हुए हरिहर शर्माने परदा उठाया; और बुरी तरह मुंह बनाकर गौरीसे कहा—"चल चल, तेरे लिए बुढ़िया अपना परलोक बिगाड़ ले क्या!"

गौरीके हाथसे गाड़ीका पहिया छूट गया; गाड़ी चली गई।

× × ×

लोगोंके मुँहसे मैंने इतना ही किस्सा सुना था; इसके बाद दुनियाकी विचित्र पोथीके विविध तथ्योंके नीचे गौरीका किस्सा न-जाने कहाँ दब गया, ढूंढ़े न मिला।

आज अचानक गौरीकी बात क्यों याद आई, इसकी एक वजह है। कल ही मेरा तबादला हुआ है। आज सवेरे उठकर प्राथमिक देख-भालके कामसे बाहर निकला था, इतनेमें पीछेसे किसी औरतकी चीख-सी सुनाई दी—"छोड़ दो रे छोड़ दो, मेरे गाँवका आदमी जा रहा है, छोड़ दो!"

मुँह फेरकर देखा तो, एक पागल औरत लोहेके सीखचोंको दोनों हाथोंसे जोरोंसे हिलाती हुई चिल्ला रही है। मैं उसके पास जाकर खड़ा हो गया। मुझे पास आते देख तुरंत ही वह घुटने टेककर बैठ गई और मेरे मुँहकी ओर देखकर बोली—"ओ मेरे गाँवके आदमी, ऐसा क्यों हुआ?"

मुझे अपनी डाक्टरी-विद्यामें इस सवालका कोई भी जवाब ढूँढ़े न मिला ; मैं चुपचाप सिर झुकाये वापस चला आया।

आत्मरक्षा

१

पन्द्रह साल बाद पन्नालाल अपने गाँव लौटा। इतने दिन वह पंजाबमें अपने चाचाके पास रहकर पढ़ता रहा ; गाँवके बारेमें उसे कुछ भी खबर नहीं थी। शामको गाँवके मुखिया लोग इकट्ठे होकर उससे मिलने आये ; उसके विद्याध्ययनकी तारीफ की ; और संक्षेपमें गाँवके हाल-चाल कह सुनाये।

उनके कहनेका सरांश यह था कि संवत् सतत्तरके तूफानमें नाव डूब जानेसे गाँवके जमींदार मधुसूदन बाबूकी मृत्यु हो गई। उनके पुत्र अपूर्वकृष्ण अपनी जायदाद गिरवी रखकर यहाँसे विलायतके लिए रवाना हुए और बम्बईमें ही किसी अंग्रेजी होटलमें ठहरे सो वहीं ठहरे रह गये। नरोत्तम रायके घर सिर्फ उनकी स्त्री ही जीवित हैं ; राय बाबू हैजेमें मर गये और उनके तीनों लड़कोंको कालाआजारने ले लिया। श्रीवास्तवोंके घरमें कोई रहा ही नहीं। दोनों भाइयोंमें कठहरके पेड़के हकपर दस साल तक मामला चलता रहा, जिसमें दोनों बरबाद हो गये ; और अन्तमें एक चला गया अपनी ससुराल और दूसरा बापकी सुसराल।

लड़कोंको कमीको वजहसे गाँवकी पाठशाला उठा दी गई। लड़कोंने एक अड्डा-सा बना रखा है, जिसमें नाटक-नौटंकी वगैरह करते हैं; और ताश खेला करते हैं।

गाँवकी औरतोंको सुबह-शाम मलिकोंके गन्दे तालाबमें नहाना पड़ता है; नदीके घाटपर जाना उनके लिए मुश्किल हो गया है। नवीगंजके चमड़ेके व्यापारी और उनके आदमी रंगीन लुंगी, धुला हुआ सफेद कुरता और उसके ऊपर रेशमी जाकिट डाटकर सुबह-शाम दोनों वक्त किश्तियोंपर बैठकर गन्दे गीत गाया करते हैं; और कभी-कभी घाटपर बैठे बीड़ी फूँका करते हैं।

गाँवके हाल-चाल सुनकर पन्नालाल जल-भुनकर खाक हो गया; बोला—"आप लोग हैं कैसे! कुछ भी करते नहीं बनता?"

नन्हेलाल चौधरी बुजुर्ग आदमी हैं, जमाना देखा है; उन्होंने कहा—"क्या करें भइया, जो कुछ है सो रुपैया है! जो कुछ होता है सो रुपयेके जोरसे ही होता है। पिछले साल राधा बैरागिन और इसी बैसाखमें मक्खन माझीकी जवान बहूको घाटसे उड़ा ले गये लोग! किसने क्या कर लिया? पुलिस रुपयोंकी, हाकिम रुपयोंके, गवाह रुपयोंके। हम बीचमें पड़ते हैं तो अपनी रोजीसे मारे जाते हैं और झूठे मामलोंमें फँसाये जाते हैं!"

दशरथलालने कहा—"गाँवकी इज्जत-आबरू सब मधुसूदन बाबूके साथ ही डूब गई। मल्लाहोंका मुहल्ला तो नवीगंजके

दलालोंके जुल्मोंसे साफ ही हो गया समझो। बहू-बेटियोंको घरमें अकेला छोड़कर काम-धन्धेसे जाना और मुँह काला करवाना एक ही बात है। यहाँसे तो अब जाना ही पड़ेगा सबको—"

पन्नालाल पहलेकी तरह तीव्र स्वरमें बोल उठा—"क्यों जाना पड़ेगा! मैं दो दिनमें सब ठीक किये देता हूं। आप लोग निश्चिन्त रहिये। सिर्फ नौजवान लड़कोंको मेरे पास भेज दीजिये; फिर देख लूंगा सबको।"

२

पन्नालाल एक तो बड़े-आदमीका लड़का, उसपर एम० ए० पास। बहुत दिन बाद देश आया है। नौजवान लड़कोंमेंसे किसीने उसे देखा नहीं था; लिहाजा दीआ-बत्ती जले बाद उनमेंसे अधिकांश पन्नालालके घर आँगनमें आकर खड़े हो गये।

पन्नालाल मुगदर फेर रहा था। मुगदर रखकर उसने सबका परिचय लिया; और कहा—"तुम लोगोंके रहते हुए गाँवमें ऐसे-ऐसे जुल्म होते हैं! तुम लोग करते क्या हो?"

युवक-दलके नेता नरेन्द्रने, जो कि बाईस सालकी उमरमें ही दुनियाकी सब बातें जान चुका था, अत्यन्त प्रवीणताके साथ कहा—"करनेको तो हम सब-कुछ कर सकते हैं; पर पीठपर कोई खड़ा हो तब न? हर काममें रुपये चाहिए। रुपये हों तो दस-बीस लठैत—"

पन्नालाल विरक्तिके साथ कड़ककर बोल उठा—"लठैतोंके बलपर मा-बहनोंकी इज्जत बचाओगे? यह बुद्धि किसने दी?"

अपने अनुयायी शिष्यवर्गके सामने इस तरहकी फटकार खाना नरेन्द्रके लिए कम अपमान नहीं था, फिर भी वह अपने गुस्सेको दबा गया; और चेहरेपर हँसी लाकर बोला—"अब आप आ गये हैं; जैसा कहेंगे वैसा किया जायगा।"

पन्नालालने कहा—"जो कुछ कहना है, मैं कल कहूँगा। क्या करना है, सो भी कल बताऊँगा; कल आना सवेरे दस बजे।"

"जो आज्ञा।"—कहकर नरेन्द्र चला गया; और रास्तेमें बीड़ी सुलगाता हुआ अपने साथियोंकी तरफ देखकर बोला—"हुंह; हाथी-ऊँट बह गये, गदहा लेवे थाह!"

सोहनने तुरत हाँमें हाँ मिलाते हुए कहा—"ठीक कहते हो भाई सा'ब!"

× × ×

रातके करीब दस बजे होंगे। पन्नालाल गाँवकी हालत देखनेके लिए अकेला ही घरसे निकल पड़ा। कुछ देर पहले तक नाटक-संघकी संगीत-चर्चा चल रही थी; अब वह भी बन्द हो चुकी है। सारे गाँवमें सन्नाटा छाया हुआ है। किसीकी बैठक तकमें बत्ती जलती नहीं दिखाई देती। किसी जमानेमें मलिकोंके चंडीमंडपमें रात-भर शतरंज खेली जाती थी, उसकी उसे कुछ-कुछ याद है। आज वहाँ देखा कि दो-तीन कुत्ते आपसमें लिपट-लिपटकर खेल रहे हैं। पन्नालाल लगभग आधे गाँवका चक्कर लगा आया, कहीं कोई दिखाई नहीं दिया; सिर्फ नदी-किनारे चमड़ेके गोदामके सामने नवीगंजके कुछ लोग बैठे ताश खेल रहे हैं; और उन्हींके पास अलग बैठा एक आदमी

खेमटाकी तर्जपर बाँसुरी बजा रहा है। रंग-ढंग देखकर पन्नालाल घर आकर बिस्तरपर पड़ रहा।

रात-भर उसे नींद नहीं आई। तड़के ही उठा; और साइकिल लेकर सीधा थानेके लिए रवाना हो गया। दारोगा साहबने कनखियोंसे नवागत युवकको एक बार गोरसे देख लिया; पर उसका रंग-ढंग देखकर वे खुश न हो सके। पन्नालालने उनसे, गाँवकी हालत पूरी तरह समझाते हुए, ज्यों ही पुलिसकी मददकी बात छेड़ी, त्यों ही दारोगा साहब बोल उठे—"पुलिस इसमें क्या कर सकती है साहब! सभी गाँवोंकी यही हालत है! पुलिसके बूतेका रोग नहीं यह। आप सब काम छोड़कर खुद पीछे पड़िये तब हो! गवाह तैयार कीजिये, फिर हम देख लेंगे। आप लोग खुद तो कुछ करेंगे नहीं; मामला चलता है तो कोई गवाह तक मिलता नहीं; और फिर मामला लटका रह जाता है तो अखबारोंमें पुलिसवालोंको कोसते और गालियाँ सुनाते हैं!"

पन्नालालने दारोगासे फिर कोई बात नहीं की। साइकिलपर सात कोस रास्ता तय करके सीधा सदर-तहसील जाकर डिप्टी साहबकी कोठीपर पहुंच गया। साहब बहादुर उस समय बरामदेमें बैठे 'ब्रेकफास्ट' कर रहे थे। पन्नालालने संक्षेपमें गाँवकी सब हालत कह सुनाई। साहबको विलायतसे आये ज्यादा दिन नहीं हुए थे। इस बलिष्ठ और साहसी युवकको देखकर वे खुश हो हुए। सब बात सुनकर उन्होंने अंग्रेजोमें कहा—"बात यह है बाबू, जो आदमी अपनी मदद करता है

उसकी भगवान भी मदद करते हैं। तुम लोग गाँवके सब नौजवान मिलकर 'पेट्रोल' और 'डिफेन्स-पार्टी' बना डालो; देखना फिर अपने-आप ही सब ठंडे हो जायंगे। गुड मॉर्निंग !"

पन्नालाल गाँव लौट आया। उसके कलके कहे अनुसार नौजवान लड़कोंका दल आँगनमें बैठा उसकी बाट देख रहा था। पन्नालालने उनसे कहा—"मैं कसरत-कुश्तीका अखाड़ा खोल रहा हूं, उसमें लाठी चलाना भी सिखाया जायगा और खेल-कूदका भी इन्तजाम रहेगा। उसमें सबको आना होगा।"

लड़कोंने आना मंजूर किया; और अपने-अपने घर चले गये।

दोपहरको घाटकी तरफ जाते हुए रास्तेमें नारायणदास चौधरी मिल गये, पन्नालालने उनसे कहा—'सब ठीक कर लिया है चौधरी साहब। अब डरनेकी कोई बात नहीं।"

३

शामको पन्नालालने मलिकोंके मकानके सामनेवाले मैदानका जंगल साफ कराना शुरू कर दिया। मैदान साफ होनेके दूसरे ही दिन वहाँ अखाड़ा खुल गया।

पन्नालाल शहर जाकर काफी रुपये खर्च करके मुगदर डम्बल वगैरह पचासों तरहके कसरत और खेलका सामान खरीद लाया। इसके सिवा बीस रुपये माहवारीपर एक पहलवान रखा; और पचीस रुपये माहवारीपर एक लठैत शिक्षक भी रख लिया। शुरू-शुरूमें दो-एक दिन शिक्षार्थियोंकी संख्या

ज्यादा नहीं हुई; नाटक-नौटंकीवाले लड़कोंमेंसे कोई नहीं आया। पर बादमें जब क्रमशः देखा गया कि किसी तरहका चन्दा नहीं देना पड़ता, बल्कि उलटा गुड़-चना खानेको मिलता है, तब नरेन्द्रका दल भी आ जुटा। हफ्ते-भर बाद पन्नालाल कँधेपर लाठी रखकर अपने चुनिन्दा शागिर्दोंके साथ नबोगंज जा पहुंचा। वहाँ चमड़ेके आड़तियोंसे उसकी क्या बात हुई, पता नहीं; लेकिन उस दिनसे उनके आदमियोंका शामको नदी-किनारे गाना गाना, किश्तियोंपर हवा खाना और घाटपर बैठकर बीड़ी फूँकना बन्द हो गया।

धीरे-धीरे शामको नदीका घाट ग्राम-बधुओंके कलहास्य और कंकण नूपुरोंकी झंकारसे मुखरित हो उठा; और गृहिणियोंका चांदनी रातमें गाँवकी गलियोंमेंसे मलिकोंके यहाँ नारी-सभामें जाना-आना शुरू हो गया।

उस दिन पन्नालाल किसी कामसे घाटकी तरफ जा रहा था और मलिकोंकी प्रौढ़ा बड़ी बहू तरुणी नवबधुओंके साथ घाटसे नहाकर लौट रही थीं; पन्नालालको देखकर बोलीं—"तुम्हारी हजारी उमर हो लालाजी, तुम्हारी बदौलत नहानेका आराम तो हुआ।"

तरुणियोंमेंसे कोई कुछ नहीं बोली; पर घूँघटोंके भीतरसे सबकी कृतज्ञ आँखें एकसाथ उसकी ओर देखने लगीं। इससे पन्नालालको खुशी न हुई हो, सो बात नहीं। मलिक-गृहिणीके आशीर्वादके उत्तरमें सिर झुकाकर वह धीरे-धीरे जहाँ जा रहा था वहाँ चला गया।

पन्नालालकी तरफसे उत्साह पाकर दूर-दूरके गाँवोंसे भी लड़के आने लगे।

पंजाबसे पन्नालालके चाचीने लिखा—"बहुत अच्छा कर रहे हो ; अगर कायम रख सके तो एक बड़ा-भारी काम हो जायगा।"

चाचाके आदेशानुसार उसने उस सालकी तमाम फसल बेच दी ; और उससे जो रुपया आया उसे अखाड़ेकी तरक्कीके काममें लगा दिया। खूब अच्छी तनखापर कलकत्तासे कुश्ती और लाठीके उस्ताद बुलाये गये।

अखाड़ेमें शिक्षार्थियोंकी संख्या जब कि सौसे भी ऊपर पहुंच चुकी, तब एक दिन पन्नालालने देखा कि बाहर गाँवके पचीस-तीस शागिर्द गैरहाजिर हैं। कारण जाननेके लिए आदमी भेजे गये ; पर उन्होंने अनुपस्थितिका कारण कुछ नहीं बताया, सिर्फ इतना कह दिया कि वे अब नहीं अयेंगे।

दूसरे दिन नरेन्द्र और उसके अनुयायियोंका दल भी न आया। खोज की गई तो मालूम हुआ कि सब बीमार हैं।

अचानक एकसाथ इतने लोगोंके बीमार पड़ जानेका कारण पन्नालालकी कुछ समझमें न आया ; फिर भी, इतना उसने समझ लिया कि इसमें कुछ रहस्य है।

तीसरे दिन सवेरे ही थानेसे एक हवलदार आया ; और वह पन्नालालकी पिछली कई पीढ़ियोंका इतिहास लिख कर ले गया।

शामको नारायणदास आये। उनके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वे आये और आते ही धपसे खाटपर बैठ गये।

थोड़ी देर अपने दुपट्टेसे हवा खानेके बाद कुछ ठंडे होकर अत्यन्त शंकित चित्त और धीमे गलेसे अपना वक्तव्य कह गये। उनके कहनेका तात्पर्य यह था कि कई दिनोंसे बाहरके दो आदमी गाँवमें चक्कर लगा रहे हैं; और दफादार आकर सबको गुप्त रूपसे कह गया है कि जो लोग अखाड़े जाते हैं उनपर कड़ी निगरानी रखनेका हाकिमका हुक्म आ गया है। समाचार देकर अन्तमें उन्होंने कहा—"तुम तो अच्छा ही कर रहे थे भइया, पर हम लोगोंकी तकदीर ही खोटी है, क्या किया जाय बताओ?"

पन्नालालने कुछ भी न बताया। थोड़ी देर बैठकर नारायण दास अपने घर चले गये।

दूसरे दिन अखाड़ा बिलकुल ही सूना रहा। पन्नालालने अपने चुने हुए शागिर्दोंके घर खुद जा-जाकर उन्हें उत्साहित करनेकी भरपूर कोशिश की; पर कोई नतीजा नहीं निकला। अधिकांश शागिर्द 'तबीयत खराब' की दुहाई देकर घरसे बाहर नहीं निकले। और, दो-चारने तो साफ-साफ कह दिया कि वे अब नहीं जायेंगे।

दूसरे दिन पन्नालाल फिर सदर-तहसील पहुंचा। वहाँ पुराने डिप्टी साहबका तबादला हो चुका था। नया जो आया है, वह पक्का सिविलियन था; इसी काममें उसकी दाढ़ी-मूँछ सफेद हुई हैं। स्लिपपर पन्नालालका देखते ही उनका खून खौल उठा। उसे बुलाकर उन्होंने कड़ककर साफ-साफ हिन्दीमें कहा—"चालाकी करनेकी दूसरी जगह नहीं मिली तुमको! कुश्तीके बहाने लड़कोंको इकट्ठा करके राजद्रोह करना चाहते हो तुम, इतनी हिम्मत तुम्हारी!"

पन्नालालने तुरत जवाब दिया—"बिलकुल झूठ! गुण्डोंके हाथसे गाँवकी बहू-बेटियोंकी इज्जत-आबरू बचानेके लिए हमारा यह संगठन है; इससे राजनीतिका कोई भी ताल्लुक नहीं।"

मजिस्ट्रेट साहबने टेबिलके कागजोंपर दस्तखत करते हुए कहा—"गाँववालोंकी हिफाजतके लिए सरकार है, पुलिस है, उसके लिए तुम्हें तकलीफ उठानेकी जरूरत नहीं। अलबत्ता, तुम अगर कुछ करना ही चाहते हो तो करो, तुम्हारी मरजी! मगर इतना याद रखना, सरकार बेवकूफ नहीं है, समझे! गुड मॉर्निङ्ग!"

पन्नालाल लौट आया। घर आकर उसने अपने दलवालोंको बुलवा भेजा; पर दो-एकके सिवा और कोई भी नहीं आया। जो आये, वे भी अखाड़ेमें आनेके लिए राजी नहीं हुए।

दूसरे दिन शामको, किसीसे बगैर मिले-जुले ही, अपने भोजपुरी पहलवानके साथ पन्नालाल नावमें सवार हुआ। क्षण-भरके लिए उसने शामके झुटपुटेमें सुनसान घाटकी ओर देखा; और एक गहरी साँस लेकर मुँह फेर लिया।

घाट और उसके आस-पास कहीं कोई भी न था; बिलकुल सन्नाटा छा रहा था। उस सन्नाटेमें दूरसे उसने सुना कि कन्हैया नाईके घरके आँगनमें उसके अखाड़ेके लड़के नौटंकीके ढंगपर नगाड़ा बजा-बजाकर गाना गा रहे हैं:—

"ओ लल्लोकी मइयो, कलेऊ लेके अइयो।
तोहि खेतनकी कराइ दैउँ सैर,
कलेऊ लेके अइयो।"

और नदीके उस पार लगभग उसी तालपर नवोगंजके बाजारमें मुहर्रमकी लाठियाँ बज रही थीं; और पास ही चम्पा बेड़िनके घर दारोगा साहब शराबके नशेमें चूर बैठे उसका नाच और गाना सुन रहे थे :—

"अँधिरिया हो रात बालम,
अइहो कि जइहो !"

बशीरका दरगाह

इस दरगाहका जरा-सा इतिहास है; पहले उसे सुन लीजिये।

बंशी भंगियोंके घर पैदा हुआ था। लेकिन उसकी मा और पाड़-पड़ोसी सबकी निश्चित धारणा थी कि पहले जन्ममें वह ब्राह्मण था, किसी बड़े पापकी वजहसे इस जन्ममें उसे अछूतके घर जन्म लेना पड़ा है। इस धारणाका एक कारण भी था; वह यह कि पाँचवीं सालमें पड़ते ही बंशीने एक दिन कह दिया, "अब मैं मांस-मछली नहीं खाऊँगा।" पहले तो माने खूब ठोंक-पीटकर उसे अपने संकल्पसे डिगाना चाहा; पर वह डिगा नहीं। अन्तमें माको भी अपने इस जिद्दी लड़केके लिए मांस-मछली खाना छोड़ देना पड़ा। इसके बाद, बंशी और कुछ बड़ा हुआ तो पड़ोसीके घरसे छोटी-सी ढोलक माँग लाया;

और उसे गलेमें लटकाकर मुहल्लोंमें जा-जाकर "ऐसे राम दीन-हितकारी, बिन-कारन पर-उपगारी" गाना शुरू कर दिया। मा नाराज हुई। वंशीके बराबरका लड़का रामू ठाकुरके घेरमें झाड़ू-बुहारी लगाकर महीनेमें नगद एक रुपया कमा लाता है; और उसका लड़का माका दुःख ही नहीं समझता। मगर कुछ कहे भी कैसे? भगवानका नाम लेता है; दूसरोंको सुनाता है, उसमें रुकावट डालना बड़ा-भारी पाप है। नतीजा यह हुआ कि बालक वंशी बिना किसी विघ्न-बाधाके रोज सुबह-शाम घर घर जाकर राम नामका कीर्तन करता रहा।

इसके बाद वंशीने जिस काममें हाथ दिया, उससे यह बात और भी अच्छी तरह साबित हो गई कि वह पहले जन्ममें ब्राह्मण ही था। यहाँ तक कि पाठशालाके गुरुजी पंडित तोताराम शर्मा तक कहने लगे, 'बतसिया भंगिनका लड़का पहले जन्ममें जरूर ब्राह्मण था; और अगले जन्ममें फिर ब्राह्मणके घर जन्म लेगा।"

वंशी रथयात्रा देखने शान्तिपुर गया था; और वहाँ वह विष्णु-मन्दिर बनते देख आया था। उसे देखते ही उसके मनमें एक नई बात पैदा हुई। घर आकर उसने अपनी मासे कहा—"मा, मैं भी विष्णु-मन्दिर बनाऊँगा, तू पैसा दे।"

मन्दिर बनवानेमें कितने पैसोंकी जरूरत है, उंगलियोंपर बीसी बीसीके हिसाबसे हिसाब लगाकर माने उसे भरसक समझानेकी कोशिश की, पर वह व्यर्थ हुई; अन्तमें झुंझलाकर माने उसकी पीठपर कुत्ता खदेड़नेका डंडा उठाकर जमा दिया।

पर उससे भी वंशी अपने संकल्पसे नहीं डिगा। भोर होनेके पहले ही वह एक टोकरी लेकर गाँवके बाहर खंडहर मन्दिरसे ईंटें उठा लानेके लिए चल दिया। देव-स्थानकी मिट्टी पर पाँव पड़नेसे पाप लगता है, यह कहकर माने उसे डाटा-फटकारा; और अन्तमें पीटना शुरू कर दिया। पर मारको उसने चुपचाप सह लिया; और बराबर अपने काममें लगा रहा। अब उसकी मासे नहीं रहा गया, वह गाँवके जमींदारोंके यहाँ जा पहुंची। ठाकुर साहबने उसे तसल्ली देते हुए कहा—"समझी वंशीकी मा, खुद भगवान उससे अपना काम ले रहे हैं। तुम उसमें बिघन मत डालो।"

इसके बाद फिर उसने लड़केके काममें रुकावट नहीं डाली।

२

वंशी ईंटें लाया, सुरखी-चूना भी जुगाड़ कर लाया। पर उसकी कल्पना जितनी ऊंची थी, दीवार उतनी ऊँची न हो सकी। बड़ी मुश्किलसे दो हाथ ऊँची होकर रह गई। वंशीका चेहरा उतर गया। शान्तिपुरके मन्दिर-जैसा तो नहीं बना! अब?

रातको वंशीने मासे लिपटकर कहा—"वैसा एक मन्दिर बना दे मा!"

माने बेटेको भरोसा देते हुए कहा—"छोटी जातका मन्दिर छोटा होना ही ठीक है बेटा! खूब मन लगाकर पुकारनेसे भगवान उसीमें आ विराजेंगे।"

दूसरे दिनसे वंशीने खूब ढोलक बजा-बजाकर, खूब गा-गाकर भगवानको जी-जानसे पुकारना शुरू कर दिया। भगवान आये या नहीं, मालूम नहीं; पर मुहल्लेके बुजुर्ग बृन्दावन पण्डित आकर कह गये कि रात-दिन इस तरह ढोलक बजानेसे वे वंशीको कान पकड़कर चौकीदारके सुपुर्द कर देंगे। चौकीदारके डरसे माने वंशीसे ढोलक छीन ली। वंशी और-कोई चारा न देख कहींसे एक अंगूरका डब्बा उठा लाया और उसीको पीट-पीटकर ढोलकका काम निकालने लगा। इस तरह एकाग्र चित्तसे वह अपने छोटेसे मन्दिरमें भगवानका आह्वान करता रहा।

उस दिन पूनोका दिन था। बृन्दावन पण्डितके घर रास-महोत्सवके उपलक्षमें भगवानकी प्रतिमा लाई गई थी। इसकी खबर पड़ते ही वंशीका उत्साह बढ़कर चरम सीमा तक पहुंच गया। उसने समझा, 'बस, अब काम बन गया'; और दिन भर वह खूब जोर-जोरसे भजन गाने लगा—

"अँखियाँ हरि दरसनकी प्यासी।
देख्यो चाहत कमल-नयननकों
निसि-दिन रहत उदासी।"

शामको घंटे-भर तक पुरोहितजीकी तरह बैठकर वह भगवानको अपने छोटेसे मन्दिरमें आनेके लिए प्रार्थना करता रहा। आज रातको भगवान आयेंगे ही आयेंगे, इसमें उसे रत्ती-भर भी सन्देह न रहा। कारण, अपनी मासे वह बराबर सुनता आया है कि भगवान पूनोकी रातको आते हैं।

वंशीकी मा बतसिया तब गहरी नींदमें पड़ी खर्राटे ले रही थी। वंशी भगवानके आनेकी प्रतीक्षामें सो नहीं सका। पंडित जीके घर रास-महोत्सवमें जब कीर्तनका प्रारम्भिक मृदङ्ग बज उठा, तब वंशी दबे-पाँव उठा और दरवाजा खोलकर बाहर निकल गया। बाहर जाकर उसने अपने मन्दिरमें झाँकके देखा, मन्दिर सूना है। निराश होकर लौट आया और अपने बिस्तर पर पड़ रहा। सवेरे उठकर अपनी मासे बोला "छोटे मन्दिरमें भगवान नहीं आ सकते मा, अब तो बड़ा मन्दिर बनवाना ही पड़ेगा।"

बड़ा मन्दिर बनवानेके लिए जिस चीजकी खास जरूरत है उसकी बात भी उसने सुन ली; और चटसे कलसगाँवके जमींदारोंके घर जाकर वह तीन रुपये माहवारीकी नौकरी करना तय कर आया। लेकिन एक कोस दूर रहकर भी वंशी अपने मन्दिरकी बात नहीं भूला। हर सनीचरको उसे छुट्टी मिला करती; और उसमें वह अपने गाँव आता और पाँच पैसेके बताशेका प्रसाद बाँटकर अपनी जातके लड़कोंको इकट्ठा कर लेता। आधी रात तक विचित्र बाजे और नाम-कीर्तनके मारे मुहल्ले-वालोंके लिए सोना मुश्किल हो जाता।

३

तीनेक साल इसी तरह बीत गये। वंशीके बड़े मालिक सा'ब काफी वृद्ध हो चुके थे। एक दिन उन्हें धुन चढ़ी; और चल दिये वृन्दावनमें बसनेके लिए। वंशीको भी नौकरीसे छुट्टी मिल गई। वंशीका मन्दिर बनवानेका इरादा सुनकर मालिकने उसे

तनखाके अलावा ऊपरसे एक मोटी रकम दानमें दी; और आशीर्वाद देकर विदा हुए। वंशी मन्दिर बनवानेके लिए पूँजी लेकर गाँव लौटा।

दो-ही-चार दिनमें ईंट-चूना-सुरखी-बालूसे वंशीके घरका आँगन भर गया। गाँवके लोगोंको पहले तो कुछ सन्देह न हुआ, पर वंशीकी मासे जब असल बात मालूम हुई, तो शरीफ-सज्जनोंमें तहलका-सा मच गया। 'अछूतका लड़का मन्दिर बनवायेगा!' 'आगम शास्त्र-धर्म-समाज सब मिट गया!'

दो-एक सज्जनोंने कृपा की; वंशीकी माको बुलवाकर सावधान कर दिया। ब्रह्म-श्रापके डरसे बतसियाका मुँह सफेद फक पड़ गया। घर आकर उसने अपने वंशीको छातीसे लगाया; और रो पड़ी।

वंशीने कहा "कुछ नहीं होनेका मा। मैं कल ही जाकर पंडितजीकी पत्री ले आऊँगा।"

'पंडितजी' कलसगाँवके चतुष्पाठीके अध्यापक हैं। उनका विधान इधरके गाँवोंमें सर्वमान्य था।

पर वंशीको पत्री लानेका मौका ही नहीं मिला। उसी रातको बतसियाको हैजा हुआ; और ब्रह्म श्रापके डरसे वह दुनिया ही छोड़कर चली गई।

शरीफ-सज्जनोंने कहा—"शास्त्रकी आज्ञा नहीं माननेसे यही हाल होता है। अरे घोर कलजुग आनेमें अभी देर है।"

माके मर जानेसे वंशी बहुत ही दुःखित हुआ। दो-चार दिन घरसे निकला नहीं; अकेला सुस्त पड़ा रहा। उसके बाद

एक दिन दूने उत्साहसे उठा; और अपने दल-बलके साथ मन्दिरके काममें लग गया।

बृन्दावन पंडित गाँवके बड़े-बूढ़े और मुखियोंमेंसे थे। वंशीके घरके नजदीक ही उनका मकान था। वंशीका भजन-कीर्तन उन्हींके लिए सबसे ज्यादा तकलीफदे था। उन्होंने सोचा कि अछूतोंके लड़कोंने मिलकर अगर कहीं सचमुच ही मन्दिर बना लिया, तो हमेशाके लिए रातको सोना उनके लिए हराम हो जायगा। सोचते सोचते उनका मिजाज इतना गरम हो उठा कि वंशीको कड़ीसे कड़ी चेतावनी देनेके लिए उसी वक्त उठके चल दिये। पर वंशी अब बड़ा हो चुका था; उसने उनकी बात और धमकोकी जरा भी परवाह नहीं की।

४

मन्दिर जब आधा बन चुका तब ऐसी एक घटना हो गई कि गाँवमें तहलका मच गया। रहीम मिस्तिरीकी स्त्रीके पहले पतिकी एक लड़की थी। उसकी शादी हुई थी दूर-गाँवमें किसी एक किसानके साथ। यह लगभग तीन साल पहलेकी बात है। महीने-भरके करीब तो वह सुसराल रही; फिर पतिको 'तलाक' देकर अपने मायके लौट आई। रहीमको इससे जरा भी रंज नहीं हुआ। उसे अपने काममें सहारा देनेके लिए एक आदमीकी जरूरत थी; अमीनाने उसकी पूर्ति कर दी। बाप-बेटी दोनों मिलकर वंशीका मन्दिर बनाने लगे। सहसा न-जाने कैसे वंशीको वह लड़की बहुत ही अच्छी लग गई।

अमीना भी इस सुन्दर बलिष्ट मिष्टभाषी युवकको बगैर प्यार किये न रह सकी। उसके कैशोरमें यौवनका रंग चढ़ रहा था। मनमें आकांक्षाओंकी भी कमी न थी। बिना किसी विचारके दोनों एक दूसरेको चाहने लगे; और प्यारका देन-लेन करने लगे। इस बातका किसीको होश ही न रहा कि एक हिन्दू अछूतकी सन्तान है और दूसरी मुसलमान राजकी लड़की। मगर, गाँवमें जिन दो-चार महिलाओंको इन सब विषयका गभीर पाण्डित्य था उनकी दूरदृष्टिसे ये न बच सके। शेखकी बेटीसे बंशीकी नाजायज घनिष्टताका समाचार तुरत गाँव-भरमें फैल गया; और उससे भी बढ़कर जो चीज फैली उसका नाम है सनसनी!

५

एक दिन दोपहरको अचानक ठाकुर साहबकी गढ़ीमें बंशीकी पुकार हुई। पंचोंकी आज्ञा सिर-माथे लेकर बंशी हाजिर हुआ। पंच और पंचायत देखनेवालोंकी भीड़से गढ़ीकी बैठक खचाखच भरी हुई थी। बड़े-बड़े पंच लो। तकियोंके सहारे बैठे तम्बाकू पीते हुए शायद समाज-पतनकी अन्तिम परिणतिकी कल्पना कर रहे थे और उसी वजनपर अपराधीको दण्ड देनेकी सोच रहे थे। बृन्दावन पण्डित ही सबसे ज्यादा चिन्ताग्रस्त दिखाई दिये; उनकी भौंहोंपर रह-रहकर सिकुड़न आ रही थी।

सामनेके आँगनमें एक कोनेमें खड़ी थी अमीनाकी मा, और उसके पीछे खड़े थे उसके दो-चार पड़ोसी। दूसरे कोनेमें

अमीना खड़ी-खड़ी मुँहमें आँचल दिये रो रही थी। गढ़ीको बठक और उसके सामनेवाले आँगनका दृश्य देखकर वंशीकी छाती दहल गई। उसके आते ही बृन्दावन पण्डितने कहा—"सिरीकिसनजी महाराज पधार गये! नीच-कमीनोंकी हिमाकत तो देखो! मन्दिर बनायेंगे, मन्दिर! शैतानके पेटमें दाढ़ी है पेटमें!"

"शेखकी बहू, क्या फरियाद है तेरी, पेश कर पंचोंके आगे?"

अमीनाकी मा दस-बारह मिनट तक न-जाने क्या-क्या कह गई, साफ-साफ सुनाई नहीं दिया; लेकिन सुननेवालोंने ठीक सुन लिया और साथ-साथ उसका गूढ़ार्थ भी समझ लिया।

"वंशीने इसकी लड़कीकी इज्जत बिगाड़ी है; यह न्याय चाहती है पंचोंसे।"

वंशीके माथेमें चक्कर आ रहा था। उसके दिमागमें घूम-फिरकर सिर्फ एक ही बात बार-बार चक्कर काटने लगी—आखिर अमीनाने ही उसे धोखा दिया! उसके मनमें जहर-सा घुल गया। वह चुप रहा, मुंहसे कुछ बोला नहीं।

अमीनाके मनमें ऐसी कोई बात नहीं थी; वह तो सिर्फ भविष्यकी विपत्तिकी कल्पना कर-करके रो रही थी। उसकी माके मनमें बहुत दिनोंसे सन्देह था; पर उसने देखी अनदेखी कर दी थी। कल शामको जब बृन्दावन पण्डितने उसे बुलवा कर गाँवकी कानाफूसीका हाल सुनाया, तो उसने भी अपने सन्देहकी बात जाहिर कर दी। उसके बाद, बृन्दावन पंडितकी सलाहके माफिक उसने अमीनासे सवाल किये और सब

बातें जान लीं। बेचारी अमीनाको क्या खबर थी कि बात इतनी बढ़ जायगी और पंचोंके आगे कैफियत देनी पड़ेगी; उसने बिना कपटके साफ मनसे सब बात मासे कह दी थी। उसके बाद आज दोपहरको जब स्वयं बृन्दावन पंडित उसके घर आकर उसकी मासे गुपचुप सलाह-मशविरा कर गये तब ओटमेंसे उसने जो कुछ सुना, उससे उसकी छाती बैठ गई; मारे डरके उसके होश उड़ गये, चेहरा उतर गया और भीतरसे ऐसी रुलाई आने लगी कि कलेजा ऊपरको आने लगा। गढ़ीमें वह आना नहीं चाहती थी, उसने काफी विरोध भी किया था; पर माने उसे मारा-पीटा और ले आई। वह अमीनाको गढ़ीमें हाजिर करनेकी जबान जो दे आई थी और उसके लिए बृन्दावन पंडितसे दस रुपयेका नोट जो ले आई है, जो अभी तक उसके आँचलमें बँधा है; फिर भला वह नमकहरामी कैसे कर सकती थी?

अमीनाकी माकी फरियाद पूरी होनेपर वंशीने दुखित चित्त और तीव्र दृष्टिसे अमीनाके मुँहकी ओर देखा अमीना और भी ज्यादा रोने लगी। पंचोंकी तरफसे वंशीको हुक्म दिया गया कि वह अपनी सफाईमें क्या कहना चाहता है, कहे। लेकिन वंशीने कुछ जवाब नहीं दिया, चुपचाप खड़ा-खड़ा देखता रहा। अन्तमें वंशीको वही दण्ड दिया गया जो कमीनोंके लिए दिया जाता है। सरपंचके हुक्मसे फेंकू चमार कान पकड़कर वंशीको आँगनमें घुमाने लगा। वंशीने फिर भी जबान नहीं हिलाई। पर अमीना कुछ देर चुप रहनेके बाद, अचानक फेंकू चमारके

पाँवों पड़ गई और फूट-फूटकर रोने लगी—"मामूजी, माफ कर दो, माफ कर दो।"

पंच और पंचायतके दर्शक सबके सब जोरसे हँस पड़े।

कान-ऐंठाई खतम होनेपर बृन्दावन पंडित बोले—"यह तो हुआ। अब सवाल है, इस लड़कीसे शादी कौन करेगा? फरियादीकी फरियादका क्या होगा?"

एक पंच बोल उठे—"दस-बीस रुपया देकर वंशी ही इसे कहीं विदा कर-कुरू देगा, और क्या?"

बृन्दावन पंडितने कहा—"अजी, ऐसा भी कहीं हुआ है! जात बिगाड़ी है। दस-बीस रुपयेसे क्या जात वापस मिल जायगी?"—फिर अमीनाकी मासे बोले—"क्यों री अमीनीकी मा, दस-बीस रुपया लेकर फैसला करेगी?"

पहले ही से दी हुई शिक्षाके माफिक उसने रोते हुए कहा—"रुपयेसे क्या इज्जत मिल जायगी पंडितजी! इस लड़कीको अब कौन घरमें रखेगा? वंशी ही मेरी बेटीसे निकाह करे तो हो सकता है।"

इतनी अच्छी युक्तिसंगत बात अब तक पंचोंके माथेमें नहीं आई, इससे लोगोंको आश्चर्य हुआ। बृन्दवन पंडितने कहा—"जब कि 'दूधका दूध पानीका पानी' न्याय करना है, तो यही करना होगा, और क्या?"

अमीनाकी माके पीछेसे कई कण्ठ एकसाथ बोल उठे—"जी हाँ हजूर, यही ठीक न्याय है।"

उसी वक्त पंचायती हुक्म जारी हो गया—'वंशीको कलमा पढ़ाकर अमीनासे उसका निकाह कर दिया जाय।'

कलमाकी बात सुनकर वंशी काँप उठा। सारी दुनिया उसकी आँखोंके सामने हजारों लाखों साँपोंकी तरह किलबिलाने लगी। वह बेहोश होकर जमीनपर गिर पड़ा। उसी हालतमें उसे उठा ले जानेका हुक्म पाकर अमीनाकी मा और उसके पीछे खड़े हुए लोग "अल्लाहो अकबर" कहकर चिल्ला उठे। बृन्दावन पंडितने कहा—"ले जा, ले जा यहाँसे जल्दी, यहाँ हल्ला करनेकी जरूरत नहीं।"

वंशीको होश तो पहले ही आ गया था; पर पहर रात बीते उसे अपनी मौजूदा हालतका पूरा-पूरा ज्ञान हुआ। देखा कि वह अमीनाके घर बैठा है, अमीना उसके पास बैठी हुई पंखासे हवा कर रही है।

६

उसके बाद?

उसके बादकी बात बहुत ही थोड़ी है। उस दिन सारी रात मुहल्लेवाले सुनते रहे, वंशी जोर-जोरसे पुकार रहा था—"जय राधे गोविन्द, जय राधे गोविन्द!" उसका तन-मन न-जाने किस अभीष्ट देवकी खोजमें पुकार-पुकारकर रो रहा था, कोई न

समझ सका। सारी रात बीती, पौ फटने लगी; पर उसकी पुकार बन्द न हुई। पौ फटनेके बाद अचानक एक धड़ाका सुनाई दिया; और उसके साथ ही वंशीका कीर्तन बन्द हो गया। मुहल्लेके लोग दौड़े आये।

वंशीने अपने हाथसे जमीन खोदकर मन्दिरकी दीवार गिरा ली थी; और उसके नीचे उसने अपने लिए समाधि बना ली थी।

गिरी हुई दीवारके नीचे खूनसे लथपथ उसके सिरके लम्बे-लम्बे बाल-भर दिखाई दिये, और कुछ-नहीं।

गाँवके शरीफ-सज्जनोंने फैसला सुनाया—'दीवारकी नींवके नीचे वंशीको गाड़कर ऊपरसे मिट्टी डाल दी जाय।'

यही वह टीला है जो आज 'बशीरका दरगाह' कहलाता है।

मसजिदमें वंशीका नाम रखा गया था बशीर।

और, अमीना?

उसके दूसरे ही दिन, अमीनाने भी वंशीकी कब्रके ऊपर सिर पटक-पटककर माथा फोड़कर वहीं अपनी जान दे दी थी। सुनते हैं मरनेके पहले वह पागल हो गई थी।